मानसपीयूष

लेखक एवं प्रकाशक
धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2022
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497, 81684 90221**
मुद्रक :

दो शब्द

रामायण सुर तरू की छाया, दुःख भये दूर निकट जो आया ।

रामायण कल्पवृक्ष की छाया के समान है जो भी व्यक्ति इसके निकट आकर बैठ जाता है उसके दुःख दूर हो जाते हैं । कवि के कहने का भाव यह है कि इसके स्वाध्याय एवं मनन से संतोष, सुख, शांति एवं आनन्द की प्राप्ति होती है । रामायण का अर्थ है राम का मार्ग या राम का घर । रामायण मर्यादा एवं समर्पण का अद्‌भुत-अद्वितीय राज ग्रंथ है ।

वस्तुतः तुलसी दास द्वारा लिखित ''रामचरितमानस'' हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है । उन्होंने इसका श्रीगणेश श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या में राम नवमी के दिन मंगलवार को 30.3.1574 ई. को किया था और इसकी इति श्रीराम के विवाह के दिन 25.11.1576 ई. को की थी । इस प्रकार इस ग्रंथ को लिखने में 2 वर्ष, 7 मास 26 दिन लगे थे । प्रस्तुत ग्रंथ में 7 काण्ड हैं । (1) बालकाण्ड, (2) अयोध्याकाण्ड, (3) आरण्य काण्ड, (4) किष्किन्धाकाण्ड, (5) सुन्दरकाण्ड, (6) लंकाकाण्ड, (7) उत्तरकाण्ड । अतः यह एक विशाल ग्रंथ है । जिसकी रचना साहित्यिक अवधी में की गई है जिसका अध्ययन करके इसे साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता है । क्योंकि प्रस्तुत ग्रंथ में निगमों (वेदों) की नैसर्गिकता, पुराणों की पौराणिकता, अध्यात्म रामायण की भक्ति योगवसिष्ठ का दर्शन, भारत का पराक्रम एवं वाल्मीकि दिव्य मानव के मानवीय जीवन के उतार-चढ़ाव का सम्यक् समावेश है ।

वस्तुतः मानस मानव जीवन का महाकाव्य है । इसके द्वारा तुलसीदास जी ने हमारी आध्यात्मिक एवं भौतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है । प्रस्तुत कृति ने अपने युग में एक महान् कार्य किया है । वह अब भी उतनी ही मूल्यवान एवं ताजी कृति है जितनी तुलसी के काल में थी । यह गुण इसे महाकृति की पदवी से विभूषित करता है । इस प्रकार विवेच्य कृति के कारण तुलसी कर्म, ज्ञान एवं भक्ति के प्रयागराज बन गये हैं । इनका ''मानस'' जन-जन का कण्ठहार बन गया है । इस को हिन्दू जाति का सर्वप्रिय धार्मिक ग्रंथ माना जाता है । इसी कारण घर-घर में तुलसी का वास है

और वे समूचे समाज द्वारा पूजे जाते हैं। तुलसी के कारण ही ''रामचरितमानस'' अमर कृति बन गई और ''रामचरितमानस'' ने तुलसी को सदा सदा के लिये अमर कर दिया है। अतः स्वामी शिवानंद जी ने अपनी पुस्तक (Bliss Divine) में सत्य ही लिखा है–

The Ramayana is a manvellous book which contains the essence of all Vedas and all sacred scriptures.

–P. 454

रामायण एक विलक्षण ग्रंथ है जिसमें सारे वेदों एवं सारे धार्मिक ग्रंथों का सार निहित है। अतः एक अंग्रेज़ लेखक के शब्दों में–

दुनियाँ में बाइबल के पश्चात् रामचरितमानस ही ऐसा ग्रंथ है जिसका बहुत संख्या में लोग दैनिक पाठ करते हैं।

जैसे अंधेरे में पड़े हुए काँच के टुकड़ों को जब शशि किरणें चुपचाप धरती पर आकर चूमती हैं तो वे हीरकनी की भाँति दिखाई देती हैं। इसी भाँति किसी कलाकार की बहुरंगीन कल्पना ऊर्जा जहाँ काले अक्षरों को स्पर्श करती है तो वे स्वर्णिम बनकर अमर हो जाते हैं। जिन्हें देखने के लिए युग आँखें सदा तरसती हैं। वही बात प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में पूर्णतः चरितार्थ होती है। मैंने तभी इसका नाम ''मानसपीयूष'' रखा है और इसमें ऐसे अनमोल रत्न जड़ने का प्रयास किया है जिसका मूल्य ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है। अतः इस ग्रंथ की मुख्य विशेषताएं अधोलिखित हैं।

(1) मैंने 'रामचरितमानस' पर रचित विभिन्न भाष्यों का गंभीर अध्ययन एवं अनुशीलन करने के पश्चात् इस ग्रंथ में से 100 अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद्याँश जोकि साधारणतः विभिन्न कथावाचकों द्वारा बोले जाते हैं का चयन करके गागर में सागर को भर दिया है जोकि वस्तुतः ''रामचरितमानस'' का सारामृत है।

(2) प्रत्येक काण्ड का सार गद्य में प्रस्तुत किया गया है। ताकि साधारण पाठक को इस ग्रंथ के गूझ रहस्यों को समझने में सुविधा हो।

(3) प्रत्येक मौलिक एवं अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद्याँशों को प्रस्तुत किया

गया है ।

(4) प्रत्येक मौलिक एवं अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद्यांशों के कठिन शब्दों के अर्थ लिख दिये गये हैं ताकि पाठकों को इसे समझने में सुविधा हो ।

(5) प्रत्येक मौलिक एवं अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद्यांशों के अन्त में इन की सरल एवं सरस व्याख्या प्रस्तुत की गई है ताकि साधारण पाठक भी इसे आसानी से समझ सके ।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री जय किशन जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, अनुराग वालिया जी, बलदेवराज जी, हरिकृष्ण शर्मा जी, मोहन लाल गुप्ता जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । इसके अतिरिक्त मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं । वस्तुतः बोलना बहुत सरल है परन्तु लिखना अत्यधिक कठिन है । जैसे कि संस्कृत में एक उक्ति है–

शतं वद एकं मा लिख

सौ बार कहो परन्तु एक बार भी मत लिखो क्योंकि लेखन में यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो वह तुरन्त पकड़ी जाती है और लेखक की पोल खुल जाती है । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु मैं भी संसार के प्रत्येक व्यक्ति की भाँति अल्पज्ञ और अपूर्ण हूँ । अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से क्षमा चाहूँगा ।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 16.9.2021

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

भारतीय संस्कृति को उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कराने में अनेकों ऋषि-मुनियों और महापुरुषों का योगदान रहा है। इन्होंने अपने अथक परिश्रम एवं आचरण से भारतीय संस्कृति को सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाया है। इनमें से दो महापुरुषों का नाम विशेष रूप से समाज के जन मानस में लिया जाता है इनमें प्रथम श्रीराम चन्द्र जी और दूसरे योगेश्वर श्रीकृष्ण जी हैं। श्रीराम भारतीय संस्कृति के आदर्श हैं तो श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के चरित्र। श्री धर्मपाल कपूर जी ने श्रीराम के जीवन पर प्रकाश डालते हुए ''मानसपीयूष'' नामक पुस्तक की रचना की है। इस रचना में श्रीराम जी के उच्च जीवन, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श मित्र, आदर्श राजा तथा आदर्श पिता के चरित्र को प्रकाशित कर समाज में नई ऊर्जा स्थापित होगी।

वस्तुतः रामायण और महाभारत केवल धार्मिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथ ही नहीं अपितु भारतीय अन्तर्रात्मा की आवाज़ हैं। सर्वप्रथम जहाँ हमें वाल्मीकि रामायण में श्रीराम के गुणों का वर्णन मिलता है वहीं पर संत शिरोमणि तुलसीदास जी ने भी श्रीराम के चरित्र को अवधी भाषा में लिख कर ''रामचरितमानस'' की रचना की है। लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक ''रामचरितमानस'' के आधार पर ही लिखी है। इस ग्रंथ के 100 विशेष दोहा, चौपाई आदि को प्रस्तुत पुस्तक में संजो कर लेखक ने पाठकों में ज्ञान की किरणों से नई ऊर्जा उत्पन्न की है। लेखक ने जहाँ साकार ब्रह्म के स्वरूप को प्रकट किया हैं वही पर उसे निराकार के रूप में उल्लिखित किया है। जैसे–

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना।।

रामचरितमानस (बालकाण्ड 184.3)

परमात्मा सर्वव्यापक है और सभी स्थानों पर विद्यमान है। ज्ञानवान् पुरुष अत्यंत प्रेम और श्रद्धा से उसे अपने अन्तर्रात्मा में अनुभव करता है। इसी भाव को यजुर्वेद में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

ओ३म् ईशा वास्यामिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।। 40.1

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ दिखाई दे रहा है सभी कुछ ईश्वर से व्याप्त है । ईश्वर इस संसार के कण-कण में है । अतः प्रभुप्रदत प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्ण भोग करो और उससे चिपटो मत । क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है ।

वस्तुतः वाल्मीकि रामायण वैदिक परम्परा पर ही आधारित थी । परन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसमें कल्पना का पुट भर कर साकार और निराकार का जो समावेश किया उससे पाठक भ्रमित होते जा रहे हैं । जब कि अनेकों स्थानों पर इन्होंने स्वयं लिखा है कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है । संतों और महात्माओं की सात्विक भक्ति पर विशेष बल दिया है जो वेद के पथ से दूर ले जाती है ऐसा कवि का मन्तव्य कहीं भी दिखाई नहीं देता । परन्तु आजकल समाज में वेद के विरुद्ध बहुत सारी बातें रामायण में जोड़ दी गई है जिससे विधर्मी श्रीराम के चरित्र पर कटाक्ष करने लगे हैं ।

अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि यह पुस्तक बहुत ही ज्ञानवर्धक है जो पाठकों के ज्ञान में वृद्धि करेगी । विद्या का दान सर्वश्रेष्ठ होता है इससे श्री धर्मपाल कपूर जी निस्संदेह बधाई के पात्र हैं । वे ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण से मुक्त हो अपना समस्त जीवन समाज के कल्याण के लिए लगा रहे हैं । मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे श्री धर्मपाल कपूर जी को लम्बी और स्वास्थ्यवर्धक आयु प्रदान करें जिससे वे निरन्तर समाज की सेवा करते रहें ।

जय किशन, एम०ए०
म. नं. 76, गाँव. व डा. कोट,
जिला पंचकूला (हरियाणा)
मो. : 8168490221
9468340497

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ
1.	बालकाण्ड	1
2.	अयोध्याकाण्ड	21
3.	अरण्यकाण्ड	35
4.	किष्किंधाकाण्ड	47
5.	सुन्दरकाण्ड	55
6.	लंकाकाण्ड	65
7.	उत्तरकाण्ड	74

1. बालकाण्ड

अम्बरीष से नहुष का जन्म हुआ। नहुष के ययाति, ययाति के नाभाग, नाभाग के अज और अज से राजा दशरथ का जन्म हुआ। दशरथ के चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुये। इतने बड़े महाराज दशरथ, बड़ा भारी उनका साम्राज्य, तीन-तीन रानियाँ, परन्तु सन्तान एक भी नहीं थी। महाराज सदा उदास रहा करते थे। उनकी यह इच्छा थी कि हमारे कोई पुत्र होता तो अच्छा होता। महाराज की ऐसी दशा देख कर कुछ लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने सोच कर यह निर्णय लिया कि ऋष्यशृंग को बुलाना चाहिए। ऋष्यशृंग ने अपनी पत्नी शांता के साथ अयोध्या नगरी में पदार्पण किया। यह देखकर सभी लोग बहुत प्रसन्न थे। जब ऋष्यशृंग अपनी पत्नी शांता, राजा एवं रानियों सहित विशेषरूप से निर्मित यज्ञमण्डप में प्रवेश कर रहे थे तो उस समय वेदपाठ चल रहा था। उन्होंने भी स्वयं यज्ञ में आहुतियाँ डाली। प्रसाद स्वरूप खीर को तीन स्वर्ण कटोरों में रखा गया। वसिष्ठ ने राजा दशरथ को भीतर बुलाकर कहा—राजन्! अपनी रानियों को ये कटोरे दे दो। पहले कौशल्या को, फिर सुमित्रा को और अन्त में कैकेयी को। समय आने पर कौशल्या ने राम को, सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को और कैकेयी ने भरत को जन्म दिया।

महल के अन्तःपुर में बालकों के पालन-पोषण एवं बड़े होने का समय पूरा होने पर जब वे तीन वर्ष के हुए तो उन्हें उनकी धायें खेल के मैदान में ले जाती थीं। जहाँ वे मन भर कर खेलते-कूदते थे। जब वे खेलकर लौटते थे तो मातायें उनका स्वागत कर महान् प्रेम एवं ध्यानपूर्वक उनका पालन करती थीं। एक दिन राजा दशरथ ने अपनी रानियों के साथ वार्तालाप में यह बताया कि यदि बालक धायों के साथ रहेंगे तो वे उचित शिक्षा नहीं पा सकेंगे। अतः उनकी शिक्षा के लिए शुभ समय निश्चित किया गया, दीक्षा-संस्कार का शुभारम्भ करने के लिए गुरुओं को बुलाया गया।

उसी दिन से वे मनोहर बालक गुरुकुल में रहने लगे। उन्होंने बहुमूल्य राजसिक आभूषण उतारकर कमर पर एक साधारण दुपट्टा बाँध लिया तथा

एक दुपट्टा गले में डाल लिया। चूंकि माता-पिता के स्नेहपूरित वातावरण में बालक शिक्षा में भलीभाँति प्रगति नहीं कर पाते। अतः वे रात दिन गुरुकुल में रह कर शिक्षा प्राप्त करने लगे क्योंकि गुरु की सेवा तथा उनके द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के अनुकरण से अधिक सीखा जा सकता है। जो भी भोजन के रूप में गुरु द्वारा प्रदान किया जाता था उसी से वे बालक अपनी क्षुधा (भूख) शांत कर लेते थे।

एक दिन महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के राजभवन में पधारे। विश्वामित्र ने पूछा। ''क्या आप अपने वचन पर दृढ़ रहेंगे या नहीं?'' दशरथ ने तुरन्त उत्तर दिया ''स्वामी! आप शायद दूसरों से ऐसा प्रश्न पूछ सकते हैं? दशरथ अपने प्रण को कभी भी नहीं तोड़ेगा। वह अपने प्राण दे देगा लेकिन वचन से नहीं फिरेगा।

विश्वामित्र ने कहा! ''नहीं, नहीं। मेरे मन में कोई शंका नहीं है। मैंने तो आप के सत्य के प्रति दृढ़तापूर्ण वचन सुनने के लिए ही ऐसा कहा था। मैं जानता हूँ कि इक्ष्वाकु वंश के राजा अपने दिए हुए वचन पर अडिग रहते हैं। मुझे आपसे न तो धन, न वाहन, न गाय, न स्वर्ण, न सेना और न ही सेवक की अपेक्षा है। मुझे केवल आप के पुत्र राम और लक्ष्मण चाहिए। यही मेरी इच्छा है। इस विषय में आप का क्या विचार है?

राजा दशरथ ने दुःखी हो वसिष्ठ को बुलवाया। वसिष्ठ शीघ्र ही आ गये और विश्वामित्र को देखकर उन्होंने मुस्कराते हुए परस्पर अभिवादन किया। वसिष्ठ ने राजा का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना। निस्संदेह वसिष्ठ उन बालकों की दिव्य वास्वविकता को भली-भाँति जानते थे। अतः उन्होंने राजा को यह परामर्श देने का निश्चय किया कि वे बिल्कुल भी चिंता न करें तथा बालकों को ऋषि के स्नेहपूर्ण संरक्षण में सहर्ष भेज दें। विश्वामित्र उठकर जाने लगे। राजा ने उनके चरण पकड़ लिए और उनसे प्रार्थना करने लगे कि वे उन्हें और थोड़ा समय दें। दशरथ ने विश्वामित्र से कर्त्तव्यबोध की शिक्षा प्रदान करने की विनती की ताकि वे ऋषि के आदेश का पालन कर सकें। वसिष्ठ ने दशरथ को अपने पास बुलाकर उन्हें परामर्श देते हुए कहा—राजन्! आप अवश्यंभावी दैवी योजना के मार्ग में बाधा बन रहे हैं। हृदय पितृस्नेह से आप्लावित (जल में डूबा हुआ) होने के कारण ही आप सत्य को नहीं देख पा

रहे हैं । आप के पुत्रों का बालबांका भी न होगा । उनसे बढ़कर शूरवीर अन्य कोई नहीं है ।

उनके यह वचन सुनकर दशरथ ने सोचा कि अब वसिष्ठ की आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है । वसिष्ठ ने बालकों को अपने पास बुलाकर उनके सिर पर अपना वरद हस्त रखकर आशीर्वादसूचक मन्त्रोच्चारण किया । बालकों ने गुरुजनों के चरणस्पर्श कर उनसे आशीर्वाद लिया । वे प्रस्थान हेतु तैयार खड़े थे । दशरथ ने देखा कि उनके मुख प्रसन्नता एवं शक्ति की आभा से चमक रहे थे । उन्होंने अपने भीतर उत्पन्न दुःख को दबाने का प्रयत्न किया । बे बालकों के कंधों पर अपने हाथ रख कर विश्वामित्र के समीप आये और कहने लगे—हे स्वामी ! आज से ये दोनों आपके ही पुत्र हैं । इनका स्वास्थ्य और प्रसन्न्ता आप पर निर्भर है । यदि आप इनके साथ कुछ निजी रक्षक भेजने का आदेश दें तो मैं तुरन्त प्रबन्ध करूँ ।

श्री राम ने धनुष को मध्य भाग से मुट्ठी बाँधकर उसे जोर से पकड़ा और उसकी प्रत्यंचा पर तीव्र टंकार दी जिससे दसों दिशायें गूँज उठी । भय से सम्पूर्ण जंगल थर्रा गया । जंगली पशु भयग्रस्त हो यत्रतत्र भागने लगे । ताड़का भी इसके घोर नाद को सुनकर एक बार तो स्तब्ध रह गई । लेकिन फिर क्रोधाभिभूत हो, जहाँ से आवाज़ आई थी उसी दिशा की ओर रोषपूर्वक दौड़ी ।

श्रीराम ने देखा कि वह राक्षसी पर्वत के समान उसकी ओर दौड़ी आ रही थी । जिस दिशा से भी आवाज़ आई उसी दिशा में राम ने बाण निर्देशन शक्ति द्वारा यह जान लिया कि ताड़का किस दिशा में थी और उन्होंने उसी दिशा में शब्दभेदी बाण छोड़ा । बाणों के परिणामस्वरूप वह सब ओर से बंध गई और बिल्कुल भी हिल न सकी ? फिर ताड़का ने क्रोध से दांत पीसते हुए अपनी भयंकर जिह्वा निकालकर राम और लक्ष्मण पर झपटने का तथा उन्हें अपने बोझ से कुचल देने का प्रयत्न किया । इस पर राम ने निश्चय किया कि अब यदि थोड़ा सा भी विलम्ब किया तो भयंकर परिणाम होंगे । उन्होंने ताड़का के वक्ष में बाण मारकर उसकी छाती चीर दी । उसके साथ ही वह भूमि पर गिर पड़ी और अपने प्राण त्याग दिए ।

ऋषि विश्वामित्र राम, लक्ष्मण तथा कुछ अन्य शिष्यों सहित मिथिला की ओर बढ़ रहे थे और उन सभी को दिन-रात अपने पूर्व वृत्तान्त तथा जिन

स्थानों और राज्यों से होकर वे जा रहे थे उन पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों के इतिहास का चित्रवत् वर्णन सुनाकर उन्हें प्रसन्न कर रहे थे। इस प्रकार वे मिथिला नगर के समीप पहुँच गये।

सायं तक वे मिथिला के समीप पहुँच गये। ऋषि ने दूर से ही नगर की ओर संकेत करते हुए बताया, ''यही अति उत्तम भवनों वाली विशाल मिथिला नगरी है।'' यह सुनकर दोनों भाई तथा ऋषि के शिष्य प्रसन्नता से उछल पड़े। उन्होंने जल्दी-जल्दी चलना आरम्भ कर दिया। शारीरिक थकान की परवाह न करते हुए वे शीघ्र ही नगर के मुख्य द्वार पर पहुँच गये।

ज्यों ही उन्होंने राजपथ पर प्रवेश किया, राजा जनक अपने मंत्रियों, सेवकों तथा संबंधियों सहित उनकी अगवानी करने स्वयं आए। उनकी दशा देखकर विश्वामित्र ने मुस्करा कर कहा, ''ये दोनों अयोध्या के राजकुमार महाराज दशरथ के पुत्र हैं। इनके नाम हैं – राम एवं लक्ष्मण। इन बालकों का पराक्रम और शक्ति अति आश्चर्यजनक एवं रहस्यात्मक है। तभी राजा जनक ने कहा, ''स्वामी! वे माता-पिता कितने धन्य हैं जिन्हें इनके समान दिव्यस्वरूप पुत्र मिले। आह! मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि ये हमारे घर पधारे हैं।''

राजा जनक ने कहा कि मैंने यह निश्चय कर लिया कि मैं उसी के साथ सीता का विवाह करूँगा जो अपने पराक्रम से इस धनुष का संधान करेगा। सीता का वरण करने के लिए अनेक राजकुमारों ने इस धनुष को उठाकर संधान करने का प्रयत्न किया लेकिन वे सभी हार गए।

उसी समय विश्वामित्र ने मुस्कराते हुए राम को देखा। राम तुरन्त ही उस वाहन के समीप गए और अपने बाँये हाथ से सन्दूक खोला तथा दायें हाथ से बड़ी सरलतापूर्वक धनुष निकाल लिया। जैसे ही धनुष पर प्रत्यंचा खींची धनुष टूट गया। चारों ओर बैठे विस्मयपूर्ण मुखों को देख रहे थे। इसके पश्चात् राजा जनक अपने सिंहासन से उठ गए और विश्वामित्र को दण्डवत् प्रणाम कर बोले, ''भगवन्! राम के समान पराक्रमी पृथ्वी पर अन्य कोई नहीं है। मैं अपने वचन का पालन करूँगा। मैं सीता का विवाह उसी से करूँगा जिसने इस धनुष को उठाकर इसकी प्रत्यंचा को खींचा।''

विश्वामित्र ने इसका उत्तर देते हुए कहा ''राजन्! यदि यह समाचार

राजा दशरथ को भेज दिया जाए तो उत्तम होगा। फिर उनके आने पर ही यह उत्सव मनाया जाए यही मेरी इच्छा है। राम अपने पिता की आज्ञा के इतने दृढ़ पालक हैं कि वे अपने पिता की आज्ञा के बिना विवाह को तैयार न होंगे।''

जब राजा दशरथ को इस शुभ समाचार का पता चला वे अपने अंगरक्षक, राजगुरु वसिष्ठ, मुख्य पुरोहित, अन्य ब्राह्मण एवं पंडित अपने-अपने रथों में बैठ कर मिथिला को चल पड़े। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों सम्पूर्ण अयोध्या नगरी ही विवाह देखने के लिए मिथिला जा रही हो। मिथिला जाने के लिए उत्सुक सभी व्यक्तियों को साथ ले जाया गया। दो रात तथा दो दिन यात्रा करने के बाद तीसरे दिन वे लोग मिथिला पहुँचे। महाराज जनक ने नगर के मुख्य द्वार पर उनका स्वागत किया। उन्होंने मन्त्रियों, ऋषियों और पुरोहितों का उनके पद के अनुसार स्वागत किया। महाराज ने उन सभी के ठहरने का प्रबन्ध करवाया।

महाराज जनक ने कहा कि मैंने कुशध्वज को आज यहाँ इसलिए बुलाया है ताकि ये इस विवाह उत्सव में आनन्द के भागी बन सकें। ब्रह्मर्षि! आपने आदेश दिया कि राम का विवाह सीता से और लक्ष्मण का विवाह मेरी दूसरी बेटी उर्मिला से हो। मैं आप के आदेश को परम हर्ष सहित स्वीकार करता हूँ। पराक्रम ही जिसको पाने का शुल्क था उस देव कन्या सीता को श्रीराम के लिए तथा दूसरी पुत्री उर्मिला को लक्ष्मण के लिए विनम्रता तथा प्रसन्नतापूर्वक समर्पित करता हूँ।

मैं एक अन्य प्रस्ताव आपकी अनुमति हेतु प्रस्तुत करता हूँ। महाराज दशरथ! आप के रत्नसम चारों पुत्र परमात्मा की दिव्य भेंट से उत्पन्न हैं। फिर शेष दो अविवाहित क्यों रह जायें? यदि उन दोनों का भी विवाह हो जाए तो हमें महान् प्रसन्नता होगी। मैं अपने भाई कुशध्वज की भी दोनों बेटियों, माण्डवी और श्रुतकीर्ति से भरत और शत्रुघ्न का विवाह करने के लिए आपकी स्वीकृति चाहता हूँ। इस पर वहाँ एकत्रित विशाल जनसागर ने उनके प्रस्ताव पर 'शुभम्' कहकर उसका अनुमोदन किया। उनकी हर्षध्वनि से आकाश गूँज उठा।

ऋषि वसिष्ठ के आदेशानुसार राजा जनक ने सीता का हाथ राम के

हाथों में रख दिया। फिर लक्ष्मण को उर्मिला का हाथ पकड़ा दिया। इसी भाँति पवित्र जल एवं वैदिक मंत्रोच्चारण सहित भरत ने माण्डवी और शत्रुघ्न ने श्रुतकीर्ति का पाणिग्रहण किया। तदुपरान्त वेदपाठ में निपुण विद्वानों ने नव-दम्पतियों पर सुरगणों के आशीर्वाद हेतु वेदोक्त विधि अनुसार विवाह संस्कार सम्पूर्ण किया।

परशुराम को नजदीक आते देख वसिष्ठ ने परम्परागत स्वागत-सत्कार चरण प्रक्षालन आदि से उनकी अगवानी की। यद्यपि उन्होंने वसिष्ठ का सत्कार स्वीकार कर लिया लेकिन वे राम को अग्निपूरित नेत्रों से टकटकी लगाकर देख रहे थे। राम उनकी ओर देखकर मंद-मंद मुस्करा रहे थे जिससे परशुराम का क्रोध और भी तीव्र हो गया। परशुराम ने गरजते हुए कहा, हे दशरथनंदन! मैंने हज़ारों जिह्वाओं से तुम्हारे अद्‌भुत पराक्रम की प्रशंसा सुनी है। मैंने यह भी सुन लिया है कि तुमने शिव धनुष को बाल क्रीडा के समान तोड़ डाला। लेकिन यह सब मैंने केवल सुना ही है, देखा नहीं है। अब मैं तुम्हारे पराक्रम को साक्षात् देखने के लिए स्वयं आया हूँ। मैं अपने पूज्य पिता जमदग्नि का दिव्य धनुष लेकर आया हूँ। तुम इस पर बाण संधान करो और अपना बल दिखलाओ। अन्यथा मुझसे युद्ध करो।

परशुराम की चुनौती सुनकर लक्ष्मण क्रोध मं आ गये थे। वे उपयुक्त उत्तर देने के लिए बीच में बोलने ही वाले थे कि राम ने उन्हें शांत किया। इसी मध्य परशुराम मुस्करा उठे। उन्होंने कहा, ''राम! जो कुछ घटित हुआ क्या तुमने उसे देखा? मैंने दिव्य प्रकाट्य तथा दैवी कान्ति की आनन्दानुभूति की है। मुझमें जो शक्ति है वह तुम्हारी ही है। हे राम! देखो मुझे प्राप्त सभी शक्तियाँ मैं तुम्हें लौटा रहा हूँ। यह कहते हुए परशुराम अदृश्य हो गये।

दशरथ ने पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं के साथ राजधानी अयोध्या में प्रवेश किया। सम्पूर्ण वातावरण संगीत की ध्वनि से गूंज उठा। जय-जयकार करते-करते लोगों के गले बैठ गये। स्त्रियों ने आरती उतारी, पथ पर पुष्प वर्षा की तथा गुलाबजल छिड़का। तब तक राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी वहाँ पहुँच गये थे तथा अपने-अपने आसन ग्रहण कर लिये थे। उन्होंने राजसी वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण तथा मुकुट धारण किये हुए थे। माताओं

तथा आमंत्रित स्त्रियों ने इस दृश्य से अपने नयन तृप्त किए। उनका आनन्द असीम था।

1. **बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।**
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।। –2.4.5
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुघात सुहाई।
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम गुन अनुसरहीं।।

अर्थ – सुलभ=सहज, मुद=आनन्द, सिधि=प्राप्ति, सठ=दुष्ट, पारस=स्पर्श, कुधात=लोहा, सुहाई=सहावना, फनि=साँप, सम=समान, अनुसरहिं=अनुसरण करते हैं।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और प्रभुकृपा के बिना सत्संग की प्राप्ति नहीं होती। सत्संग कल्याण का मूल है। इसकी प्राप्ति ही फल है और सब साधनों को तो फूल समझना चाहिये।

सत्संग के प्रभाव से दुष्ट व्यक्ति भी सुधर जाते हैं जैसे परसमणि के स्पर्शमात्र से लोहा भी सोना हो जाता है। सत्संग के प्रभाव से कौए हंस और हंस परमहंस बन जाते हैं। यदि दुर्भाग्यवश सज्जन कुसंग में पड़ जाते हैं तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही प्रकाश करते हैं। वस्तुतः सत्संग का मानवजीवन में अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि व्यक्ति जैसी संगति करता है वह वैसा ही हो जाता है। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

जैसा संग वैसा रंग। जैसा पानी वैसी वाणी।।
जैसा अन्न वैसा मन। जैसा ख्याल वैसा व्यवहार।।
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। जैसी करनी वैसी भरनी।।

सत्संग शब्द सत् + संग से बनता है सत् का अर्थ है सत्य और संग का अर्थ है मिलन। सत्संग भी चार प्रकार का होता है। पहली प्रकार का सत्संग प्रभुमिलन और प्रभुप्रेम ही सर्वश्रेष्ठ सत्संग है। इस प्रकार के

सत्संग के उज्ज्वल उदाहरण रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में शबरी एवं सुतीक्षा नामक भक्तिनों के मिलते हैं। दूसरी प्रकार का सत्संग संतों-महात्माओं का होता है जैसे महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद का सत्संग आदि। तीसरी प्रकार का सत्संग सच्चे भक्तों, वीतरागियों का सत्संग है जैसे याज्ञवल्क्य के सत्संग से मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान हो गया और महर्षि उद्दालक के सत्संग से श्वेतकेतु को भी ब्रह्मज्ञान हो गया। चौथी प्रकार का सत्संग आर्ष ग्रंथों एवं सत्शास्त्रों का स्वाध्याय ही सत्संग है।

दरअसल यदि साधारण व्यक्ति बोलता है वार्तालाप बन जाता है। यदि प्रोफेसर बोलता है तो लैक्चर बन जाता है। यदि कोई नेता बोलता है तो वह भाषण बन जाता है। यदि कोई पंडित रोज़ी-रोटी के लिए बोलता है तो वह कथा कहलाती है जैसे रामकथा, भागवतकथा आदि। परन्तु यदि कोई सच्चा संत बोलता है तो वह सत्संग कहलाता है। अतः सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए ''सेवक'' जी ने कितना सुन्दर लिखा है–

आदत है अगर कहीं जाने की, तो सत्संग में तुम जाया करो।
आदत है अगर कमाने की तो अच्छे कर्म कमाया करो।
आदत हे अगर अपनाने की तो सब के गुण अपनाया करो।
आदत है अगर गुस्सा खाने की तो मन पर गुस्सा खाया करो।
आदत है अगर शर्माने की तो पापों से शर्माया करो।
आदत है जो 'सेवक' गाने की तो गीत प्रभु के गाया करो।।

इसी प्रकार एक उर्दूशायर के शब्दों में–

हर रोज उस रब की बात होती है।
पर सत्संग में तो उससे मुलाक़ात होती है।।
बहुत लोग उसकी रहमतों को तरसते हैं।
पर सत्संग में तो उसी रहमतों की बरसात होती है।।

2. **जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।**
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकारदाहो । । दोहा । । 6 । ।

अर्थ–बिस्व = संसार, करतार = परमेश्वर, पय = दूध, बारि = जल, गहहिं=लेना, बिकार=दोष

परमेश्वर ने इस जड़ चेतन एवं गुण दोषमय संसार की रचना की है। परन्तु सत रूपी हंस दोष रूपी जल को छोड़कर गुण रूपी दूध ही ग्रहण करते हैं। जैसे हंस दूध में से जल निकालकर दूध-दूध पी लेता है। ऐसा विवेक हंस को छोड़कर किसी को नहीं होता है, जैसे ही दोष को छोड़कर केवल गुण सब में से निकाल कर ग्रहण करना यह केवल संत का काम ही है। जैसे कबीर ने लिखा है–

साधू ऐसा चाहिऐ जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै थोथा देह उड़ाय । ।

कबीर जी कहते हैं कि साधु तो ऐसा होना चाहिये जो छाज की भाँति समस्त पदार्थों से सारतत्त्व को निकाल ले और शेष को छोड़ दें। केवल सार शब्द को ही ग्रहण कर लेना ही सज्जन पुरुषों का गुण है।

3. **आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ बासी । ।**
सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी । । 7(घ).1

अर्थ–चारि=पिण्डज, अण्डज, उद्भिज, स्वेदज चार प्रकार के जीव जुग= दोनों, पानी=हाथ।

तुलसीदास जी संतों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि इस संसार में 84 लाख योनियों में चार प्रकार के जीव जरायुज, अण्डज, उद्भिज, स्वेदज समूचे ब्रह्माण्ड में रहते हैं। इन सबसे भरे हुए इस समस्त संसार को सीताराममय जानकर मैं करबद्ध प्रणाम करता हूँ। वस्तुतः तुलसीदास श्रीराम के अनन्य एवं ज्ञानी भक्त थे। इसी कारण उन्हें संसार के कण-कण में सीता राम ही नज़र आते थे। क्योंकि जैसी व्यक्ति की दृष्टि होती है वैसी उसे सृष्टि नज़र आती है। इसी प्रकार

गुरु रामदास जी ''श्रीगुरुग्रंथसाहिब'' में लिखते हैं–

आपे अंडज जेरज सेतज उतभुज आपे खंड आपे सम लोइ।।
आपे सूतु आपे बहु मणीआ करि सकती जगतु परोइ।।
आपे ही सुतधारु है पिआरा सूतु खिंचे ढहि ढेरी होइ।।
मेरे मन मैं हरि बिनु अवरु न कोइ।। –महला 4 पृ० 605

अण्डज, पिण्डज, उद्भिज एवं स्वेदज अर्थात् चार प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। अण्डे से पैदा होने वाले जीवन जैसे कबूतर, चिड़िया, सर्प आदि को अण्डज कहते हैं। जेर से पैदा होने वाले जीव जैसे मानव, पशु पिण्डज, उद्भिज पृथिवी से पैदा होने वाली वनस्पति जगत् जैसे वृक्ष, लता आदि एवं स्वेदज मक्खी, मच्छर कीटाणु आदि इन सब में स्वयं परमात्मा है। सारे संसार में वही परमात्मा है। जैसे मोतियों की माला में एक धागा और उसमें पिरोए हुए मोती होते हैं। उसी प्रकार यह सारा संसार परमात्मा का ही है। स्वयं एक सूत के समान एवं उसमें पिरोए मोतियों के समान है। सूत भी वो ही मोती भी वह ही स्वयं ही वह सूत्रधार है। अपनी खुशी से जब वह प्यारा अपनी शक्ति से सूत खींचता है तो सारी रचना ढह जाती है। मेरे मन में परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक है। अतः तुलसीदास जी ने प्रस्तुत पद्यांश में ''रामचरितमानस'' का सार प्रस्तुत किया है।

4. **एहि मँह रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा।।**
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी।। 9.1

अर्थ – श्रुति=वेद, पुरारी=शिव।

तुलसीदास जी संतों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि मेरा कविता सब गुणों से रहित है। परन्तु उसमें एक गुण है जो जगत् भर में प्रसिद्ध है। उसे विचार कर सुन्दर बुद्धि वाले जिनके निर्मल विवेक हैं, इसे सुनेंगे। इसमें अत्यंत पावन वेद पुराणों का सार, कल्याण का भवन, अमंगलों को नाश करने वाला श्रीराम का उदार नाम है जिसे पार्वती सहित शिव

भी जपते हैं । कवि के कहने का भाव यह है कि उनके काव्य का सार राम नाम है जोकि मानव जीवन के लिये कल्याणकारी है ।

5. **कीरति भनिति भूर्ति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।** 13.4

अर्थ – कीर्ति = प्रसिद्धि, भनिति = कविता, भूर्ति = सम्पत्ति, सुरसरि = गंगा ।

तुलसीदास उपदेश देते हुए कहते हैं कि प्रसिद्धि, कविता और सम्पत्ति वही कल्याणकारी है जो गंगामाता की भाँति सर्वकल्याणकारी हो ।

(2) **नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू । । –26.4**

कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है परन्तु रामनाम ही एक आधार है । कवि के कहने का भाव यह है कि शुद्ध मन से राम नाम का जाप करके मानव भवसागर से पार उतर सकता है । जैसे गुरुनानक जी लिखते हैं –

किरत करो, नामजपो, वंड छक्को ।

ईमानदारी से अपना काम करो, सदा परमात्मा को याद रखो और अपनी हैसियत के अनुसार दुःखी व्यक्ति और असहायों की सहायता करो । यही सब धर्मों का सार है ।

6. **सुठि सुन्दर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि ।**
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि । । दोहा 36

अर्थ – सुठि=अत्यंत उत्तम, सुभाग सर=सुन्दर तलाब, घार= संवाद ।

इस कथा में बुद्धि से विचारकर जो चार सुन्दर एवं उत्तम संवाद रच गये हैं वही इस पवित्र एवं सुन्दर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं । वस्तुतः चारों संवादों का महात्म्य है, क्योंकि चारों संवाद एक दूसरे में गठे एवं गुंथे हैं और सब मिलकर रामचरितमानस ग्रंथ भी रचा गया है । अतः चारों संवाद अत्यन्त सुन्दर हैं । चारों संवादों का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है ।

(1) तुलसी संत संवाद गो-घाट के समान है। क्योंकि यह संवाद दीनता से परिपूर्ण है। तुलसी दास जी ने आदि के 35 दोहों में एवं ग्रंथ के स्थान-स्थान पर दीनता दर्शाई है।

(2) याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद पंचायतीघाट के समान है इसे कर्मकाण्ड घाट भी कहते हैं क्योंकि इससे कर्मकाण्ड की प्रधानता है।

(3) शिव-पार्वती संवाद राजघाट तुल्य है क्योंकि यह ज्ञानमय संवाद है।

(4) कागभुशुण्डि-गरुड संवाद पनघट घाट के समान है क्योंकि जैसे एक सती स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरे पति पर दृष्टि नहीं डालती है वैसे ही ये अनन्य उपासक हैं। यहाँ तक कि अपने प्रभु एवं उनके चरित्र को छोड़कर दूसरे की बात भी नहीं करते हैं। अतः इसको इसी कारण उपासना काण्ड घाट के नाम से पुकारा जाता है। अतः ''रामचरितमानस'' भी गीता की भाँति एक सम्वाद ग्रंथ है। क्योंकि इस प्रकार गीता में भी धृतराष्ट्र, संजय, अर्जुन एवं श्रीकृष्ण के संवाद हैं।

7. **होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा। –51.4**

अर्थ–साखा=विस्तार।

शिवजी से कहते हैं कि वही होगा जो प्रभु चाहते हैं, फिर इस विषय को विस्तार देना व्यर्थ है अर्थात् मानव को जीवन में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अपितु प्रभुचरणशरण में रहना चाहिये तभी उसके जीवन में सुख, शांति एवं आनंद की वृष्टि होगी। इन पंक्तियों की तुलना सूरदास जी की निम्नलिखित पंक्तियों से द्रष्टव्य है–

करी गोपाल की सब होइ।

जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोई।।

भक्त जब साधना की चरमसीमा पर पहुँच जाता है तो उसके लिये सांसारिक हानि लाभ का महत्त्व गौण हो जाता है। वह समझता है जो

कुछ हो रहा है उसके मूल में व्यक्ति का कोई भी पौरष नहीं है । अतः जो भी होता है वह प्रभुकृपा से ही होता है । प्रभु जो करना चाहेंगे वही होगा । अतः सदा परमात्मा की रजा में रहना उचित है । क्योंकि तर्क-वितर्क में पड़ने से अपार संशयों के उत्पन्न हाने से प्रभुभक्ति में बाधा व्यवस्थित हो जाती है । ऐसा विचार कर शिवजी भजन में लग जाते हैं और उन्हें शांति प्राप्त हो जाती है ।

8. **कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।**
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार । । दोहा 68

अर्थ–हिमवंत=हिमवान्, लिलार=ललाट ।

देवर्षि नारद जी की वाणी झूठी न होगी यह विचार कर पार्वती के पिता हिमवान् उसकी माता मैना आदि चिन्ता के सागर में डूब गई । इस पर नारद जी हिमवान् को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे हिमवान् ! सुनो ! जो कुछ विधाता ने भाग्य में लिख रखा है उसको देवता, दानव, मानव, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते हैं । कवि के कहने का भाव यह है कि होनी अवश्य होकर रहेगी । जैसे किसी हिन्दी कवि ने लिखा है–

जो विधना ने लिख दिये छठी रात के अंक ।
राई घटे न पल बढ़े रह रह जीव निशंक । ।
होनहार होके रहे बिसर गई सब बुद्ध ।
जैसी होते भवतब्यता वैसी उपजै बुद्ध । ।

9. **सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई । सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई । ।**
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं । रबि पावक सुरसरि की नाईं । । 68.4

अर्थ – सलिल–जल, सुरसरि–गंगा, अपुनीत=अपवित्र, रबि–सूर्य, पावक=अग्नि ।

नारद जी हिमवान् को उपदेश देते हुए कहते हैं कि जैसे विष्णु शेषनाग की शय्या पर सोते हैं, तो भी पंडित उसको दोष नहीं लगाता हैं । सूर्य

एवं अग्निदेव अच्छे-बुरे सभी रसों का भक्षण करते हैं परन्तु कोई उनको बुरा नहीं कहता है। इसी प्रकार गंगा नदी में शुभ एवं अशुभ सभी प्रकार का जल बहता है। परन्तु कोई भी उन्हें अपवित्र नहीं कहता है। क्योंकि सूर्य अग्नि एवं गंगा की भाँति समर्थ को दोष नहीं लगता है। क्योंकि उसमें उस दोष को पचा डालने की शक्ति होती है। अतः समर्थ दोषों को पचा लेता है। उसमें दोष भी विकार न उत्पन्न कर गुण का रूप धारण कर लेते हैं। गंगा में मैले नालों का जल मिलते ही उसके सब कीड़े मर जाते हैं और वही जल गंगा जल के समान गुणकारी हो जाता है।

10. **जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवण रंध्र अहि भवन समाना।।** 112.1

अर्थ – श्रवण=कान, रंध्र=छंद, अहिभवन–सर्प का बिल (बांबी)

शिव जी पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे पार्वती! आप का जीवन धन्य है! धन्य है! क्योंकि आपने मुझे राम कथा के विषय में प्रसंग पूछा है। अतः मैं आप को रामकथा की महत्ता का वर्णन करता हूँ।

हे पार्वती! जिन व्यक्तियों ने कानों से हरिकथा नहीं सुनी उनके कानों के छिद्र साँप में बिल के समान हैं।

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा।।

ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला।। 112.2

अर्थ–कटु तुबरी=कड़वी लौकी, समतूल=समान

जिन नेत्रों से संतों का दर्शन नहीं किया। वे नेत्र मोर के पंख की चन्द्रिकाओं के समान हैं जो सिर प्रभुचरणों पर नहीं झुकते हैं वे कड़वी लौकी के समान है।। सतों का दर्शन जिन नेत्री से न किया गया हो उसकी गणना मोर पंख से की गई है। अर्थात् वे नेत्र चाहे कितने भी

खूबसूरत कमलवत् ही क्यों न हो, परन्तु वे और उनकी सुन्दरता व्यर्थ है ।

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी । जीवत सव समान तेइ प्रानी ।।
जो नहिं करइ राम गुन गाना । जहि सो दादुर जहि समाना ।। 112.3

अर्थ –सव=मर्दे, दादुर=मेंढक ।

जो व्यक्ति प्रभुभक्ति को अपने हृदय में नहीं लाये वे प्राणी जीते जी मुर्दे के समान है । जो जीभ राम गुणगान नहीं करती है, वह मेढ़क के समान है । शव समान कहने का भाव यह है कि उनका जीवन व्यर्थ है जैसे व्यर्थ समझकर मुर्दा जलाया जाता है । पुनः मुर्दे को छूने से लोग अपवित्र हो जाते हैं । स्नान के उपरांत शुद्धि होती है । वैसे ही भक्तिहीन व्यक्ति का जीवन भी अपवित्र होता है । अतः व्यक्ति को प्रभुभक्ति करनी चाहिए ।

कुलिस कठोर निष्ठुर सोइ छाती । सुनि हरिचरित न जो हरषाती ।। 112.4

अर्थ –कुलिस=वज्र, निठुर=निर्दय, हरषती=हर्षित होना ।

वह छाती वर्ज समान कठेर एवं निष्ठुर है जो हरिचरित सुनकर भी हर्षित नहीं होती है । कवि के कहने का भाव यह है कि प्रभुभक्ति के बिना मानव जीवन व्यर्थ है क्योंकि व्यक्ति को प्रभु की रजा में रहकर सुख, शान्ति एवं आनन्द की उपलब्धि होती है । क्योंकि आनन्द प्रभु का पर्यायवाची शब्द है अतः मुझे कहना पड़ा–

विषय विकारों ने सब बिगाड़े, प्रभुभक्ति ने सब तारे ।
जो प्रभुभक्ति नहीं करते वे हैं, वे हैं क़िस्मत के मारे ।।

11. **सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ।।**
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।। 115.1

अर्थ–बुध=पंडित, बेदा=वेद, अगुन=निर्गुण, अरूप=निराकार, अलख = अव्यक्त, अज=अजन्मा ।

शिवजी पार्वती को परमात्मा के अपार गुणों का वर्णन करते हुए कहते

हैं कि निर्गुण और सगुण में कुछ भी अंतर नहीं है। जो निर्गुण, निराकार, अव्यक्त एवं अजन्मा है वही भक्तजनों के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है अर्थात् परमात्मा के गुण अनंत एवं असीम है। इसी कारण उपनिषदों में भी परमात्मा को नेति नेति (यह नहीं है यह नहीं है) कहकर पुकारा गया है। क्योंकि तर्क-वितर्क में पड़ने से अपार संशयों के उत्पन्न होने से प्रभुभक्ति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। ऐसा विचार कर शिव जी भजन में लग जाते हैं और शांति प्राप्त हो जाती है।

परन्तु यह प्रस्तुत सिद्धान्त वेद विरुद्ध है क्योंकि परमात्मा सदा से निराकार एवं सर्वव्यापक है और रहेगा। वह कभी भी सगुण एवं एकदेशीय नहीं हो सकता है। हाँ वह अनन्त होने के कारण गुणों का भंडार है।

12. **बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।**
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।। 117.3-4

अर्थ– आनन=मुख, बड़=बहुत, जोगी=योग्य, परस=स्पर्श, ग्रहइ=सूंघना, घ्रान=गंध, बिनुवास=नाक, असेषा=सब

शिव जी पार्वती को निराकार परमेश्वर का निरुपण करते हुये उपदेश देते हैं कि उस परमात्मा का आदि एवं अंत कोई भी नहीं जानता है। वेदों ने बुद्धि से अनुमान करके कहा गया है कि वह बिना पैर के चलता है, बिना कान के सुनता है, बिना हाथ के अनेक प्रकार के कार्य करता है। मुख के बिना ही सम्पूर्ण रसों का भोक्ता है। वाणी के बिना ही बड़ा योग्य वक्ता है। वह शरीर के बिना ही स्पर्श करता है एवं नेत्रों के बिना ही देखता है। नाक के बिना ही सम्पूर्ण गंध को ग्रहण करता है। अतः उसकी करनी अद्‌भुत है जिसकी महिमा अवर्णनीय है। यहाँ पर कवि

ने प्रभु के विराट् एवं निराकार रूप का अद्भुत-अद्वितीय वर्णन किया है जोकि अत्यंत श्लाघनीय है। जैसे नत्था सिंह 'निर्दोष' ''भक्ति'' नामक कविता में लिखते हैं–

ज़र्रे ज़र्रे में झांकी भगवान् की।
किसी सूझ वाली आँख ने पहचान की।।

13. **जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहिं असुर अधम अभिमानी।**
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। 120(घ)3.4

शिव जी पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे पार्वती! संत, मुनि, वेद एवं पुराण कहते हैं कि जब जब धर्म का पतन होता है और नीच अभिमानी राक्षस लोग बढ़ जाते हैं तब तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति भाँति के शरीर धारण करके सज्जनों के दुःख दूर करते हैं।

वस्तुतः यहाँ पर कवि ने अवतारवाद का वर्णन किया है परन्तु वेदानुसार अवतारवाद का सिद्धान्त परमात्मा पर लागू नहीं होता। जैसे एक हिन्दी कवि लिखते हैं–

जन्ममरण से रहित है निश्चय वह करतार।
नियमबद्ध वह प्रभु है लेता नहीं अवतार।।

14. **हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।।** 139.3

शिवजी पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि कल्प-कल्प में जब प्रभु अवतार लेते हैं और अनेक प्रकार के सुन्दर चरित्र करते हैं। तब तक परम पवित्र काव्य रचना करके मुनीश्वर कथाएँ गाया करते हैं और भाँति-भाँति के अनेक अनुपम प्रसंग वर्णन किया करते हैं। बुद्धिमान लोग उन्हें सुनकर आश्चर्य नहीं करते हैं। वस्तुतः प्रभु अनन्त है और उनकी कथा का भी अन्त नहीं। सब संत इसको अनेक प्रकार से कहते सुनते हैं। कवि के कहने का क्या भाव यह है कि प्रभु की लीला अद्भुत-अद्वितीय है। जैसे एक कवि के शब्दों में–

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तपपि कहे निज रहा न कोई।।

15. **तुलसी जसि भवतब्यता तैरी मिलइ सहाइ ।**
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ ।। दोहा 159(ख)

अर्थ–भवतव्यता=होनहार, सहाइ=सहायता

तुलसीदास जी संतों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि जैसी होनहार होती है वैसी ही सहायता मिल जाती है । वह भावी स्वयं ही उसके पास आ जाती है और आकर उसको वहीं ले जाती है जहाँ सहाय करने वाला होता है । कवि के कहने का भाव यह है कि होनहार को कोई भी व्यक्ति नहीं रोक सकता है । जैसे सूरदास जी लिखते है–

करमगति टारे नाहिं टरी ।
गुरु वशिष्ठ से पंडित ज्ञानी रुचि रुचि लगन धरि ।
सीता हरन मरन दशरथ को विपत पे विपत परी ।।

16. **भरद्वाज सुनु जाहि होइ बिधाता बाम ।**
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम ।। दोहा 175

अर्थ–बाम=उलटा, मेरु=पर्वत, ब्याल=सर्प, दाम=रस्सी

याज्ञवल्क्य भारद्वाज को उपदेश देते हुये कहते हैं कि सत्यकेतु कुल में कोई नहीं बचा । ब्राह्मणों का शाप झूठा कैसे हो सकता था । शत्रु को जीतकर नगर को फिर से बसाकर सब राजा विजय एवं यश पाकर अपने-अपने नगरों को चले जाये । भाव यह है कि भानु प्रताप ने सब राजाओं का जय यश हर लिया था । अतः याज्ञवल्क्य जी कहते हैं हे भारद्वाज–सुनो ! जिस पर जब विधाता विपरीत होते हैं तब उस को धूलि पर्वत के समान, पिता यमराज के समान, रस्सी एवं माला साँप के समान प्रतीत होती है ।

17. **हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना ।।** 184.3

परमात्मा की सर्वव्यापकता पर प्रकाश डालते हुये शिव पार्वती से कहते हैं कि परमात्मा सर्वस्थानों पर समान रूप से व्यापक है । वह सृष्टि के कण-कण में दृष्टिगोचर हो रहा है । परन्तु वह प्रेम एवं श्रद्धा से ही प्रकट होते हैं । कवि के कहने का भाव यह है कि परमात्मा सृष्टि के

ज़र्रे-ज़र्रे में ओतप्रोत है। इसी भाव को यजुर्वेद में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

ओम् ईशा वास्यामिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। 40.1

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ दिखाई दे रहा है सभी कुछ ईश्वर से व्याप्त है। ईश्वर इस संसार के कण-कण में है। अतः प्रभु- प्रदत प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्ण भोग करो और उससे चिपटो मत। क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है। जैसे पलटू साहिब लिखते हैं–

साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार।
केवल भक्ति पियार साहिब भक्ति में राजी।।

18. **कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।**
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।। 229.1

अर्थ– कंकन= हाथ का आभूषण, किंकिन=करधनी, नूपुर=पाजेब, मदन=कामदेव, दुन्दुभी=नगाड़ा, मनसा=संकल्प।

नारद जी के वचनों का स्मरण करके सीता जी के मन में पवित्र प्रेम उत्पन्न हुआ। वह चकित होकर सब ओर इस प्रकार देख रही है जैसे मृगछैनी (बच्चा हरिणी) डर गई हो। इस प्रकार कंकण, करधनी एवं पाजेब की ध्वनि सुनकर श्रीराम हृदय में विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं। हे लक्ष्मण! यह ध्वनि तो ऐसी हो रही है मानो कामनेदव ने नगाड़ा बजाया हो और संसार विजय का संकल्प किया हो। कवि के कहने का भाव यह है कि सीता जी के आभूषणों की ध्वनि से श्रीराम के हृदय में पवित्र प्रेम उपजा और उनके हृदय में खलबली मच गई और उसका सार उन्होंने लक्ष्मण से कहा।

19. **लताभवन तें प्रगट मे तेहि अवसर दोउ भाइ।**
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।। दोहा 232

अर्थ –लताभवन=लताकुंज, बिमल बिधु=निर्मल चन्द्रमा, जलद=मेघ, पटल=पर्दा, बिलगाइ=अलग कर

नेत्रों के रास्ते को हृदय में लाकर सीता जी पलकों के किवाड़ बंद करके

ध्यान मग्न हो गई । जब सखियों ने सीता जी को प्रेम के वश जाना तब वे कुछ शर्मा गई और कुछ भी न कह सकी । उस समय दोनों भाई लताकुंज से निकले जैसे दो निर्मल चन्द्रमा मेघवरण को अलग करके निकले हों । वस्तुतः कवि अपनी कल्पना से पाठकों का ध्यान बलपूर्वक खीचकर मेघ समूह को फाड़कर दो चन्द्रमाओं के निकलने के दृश्य की ओर ले जाता है जिससे लताओं को चीरकर उनके बीच से निकलने की छटा का अनुमान किया जा सके ।

20. **जिन्ह कें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।।** 240.2

जिस समय राम एवं लक्ष्मण सीता विवाह में पधारे मानो साक्षात् सौंदर्य उन पर छा रहा हो । वे दोनों भाई अनेक राजाओं के मध्य में ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों तारों के मध्य में दो पूर्ण चन्द्रमा । परन्तु फिर भी जिनकी जैसी भावना थी उसी प्रकार से उन्हें देखा । कवि के कहने का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी भावना के अनुसार ही सृष्टि का अवलोकन करता है तभी तो कहा जाता है जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि । इस प्रकार अपनी भावना के अनुसार ही सब व्यक्तियों ने राम एवं लक्ष्मण को देखा । जैसे थोम्स गरे लिखते हैं–

Man considers the actions God weighs the intentions.

व्यक्ति कर्म देखता है, परमात्मा भावना देखता है ।

2. अयोध्याकाण्ड

इस काण्ड की कथा का आरम्भ श्री राम के वैवाहिक जीवन से होता है। श्री राम सीता को ब्याह कर अवध में आ गये। श्री राम को युवराज के पद पर आसीन करने के लिए वसिष्ठ द्वारा बताई गई वस्तुएं एकत्रित की जान लगीं इन वस्तुओं में समस्त तीर्थों से जल, औषधि, मूल (जड़), फल और पत्र, चंवर मृगचर्म वस्त्र, रत्न आदि एकत्रित किए गए। नगर में मंडप सजाया गया तथा रत्नों से चौक पूरे गए और बाज़ार को विविध प्रकार से सजाया गया। श्री राम के युवराज बनने के समाचार से सम्पूर्ण अयोध्या नगरी में प्रसन्नता की लहर फैल गई। श्री राम और सीता इस अवसर पर होने वाले शुभ शकुनों का अर्थ लगाते हैं कि भरत आने वाले हैं।

मुनि वसिष्ठ श्री राम को बताते हें कि राजा ने राज्याभिषेक की तैयार कर ली है और वे आपको युवराज पद देना चाहते हैं। सम्पूर्ण अयोध्या नगरी में अनेक प्रकार से खुशियाँ मनाई जा रही हैं। मंथरा ने जब शहर में आकर राम के राज्याभिषेक का समाचार सुना तो उसका हृदय जल उठा। वह उदास भाव से त्रियाचरित्र फैलाती हुई कैकेयी के पास जाती है। रानी कैकेयी ने हँसकार उसकी उदासी का कारण पूछा—तो वह केवल लम्बी-लम्बी साँसें ही छोड़ती रह गई। रानी के बार-बार पूछने पर वह बोली—आज श्री राम को छोड़कर किसकी कुशल है। उन्हें राजा युवराज पद दे रहे हैं। आज विधाता कौशल्या के दाहिने है। तुम्हारा पुत्र परदेश में है और तुम्हें इस बात का सोच नहीं। श्री राम को तिलक हो जाने के पश्चात् वह 'दूध की माखी' के समान हो जाएगी और सुत सहित यदि उसने सेवा न की तो घर में न रहने पाएगी। भरत को बंदी बना लिया जाएगा। रानी जब मंथरा के कहने में आ जाती है तो मंथरा की सलाह से कोप भवन में जाने तथा राजा दशरथ से दो वर मांगने को तैयार हो जाती है। भरत को राज्य तथा श्री राम को 14 वर्ष का वनवास।

सायंकाल राजा दशरथ कैकेयी के महल में जाते हैं और वहाँ उसके कोप भवन में जाने की बात सुनकर सूख जाते हैं। त्रिया के कुवेष को देखकर उसे मनाने का प्रयत्न करते हैं। वे इसे कामदेव की क्रीड़ा समझकर सुमुखी, सुलोचना, कोकिलनयनी, गजगामिनी आदि कहते हैं तथा वे राम की शपथ

खाकर कहते हैं कि कैकेयी जो कुछ मांगे उसकी बात फौरन पूरी कर दी जाएगी। इस प्रकार नीतिनिपुण राजा भी नारी के चरित्र में डूब गये। राजा को पूर्ण विश्वास में लेकर कैकेयी ने उनसे दो वर मांगे। भरत के लिए राज्य और राम को 14 वर्ष का वनवास। इस अप्रत्याशित याचना को सुनकर दशरथ एकदम सहम जाते हैं।

दशरथ कैकेयी को बार-बार समझाते हैं कि श्री राम और भरत मेरी दो आँखें हैं। कैकेयी राजा की किसी बात पर ध्यान नहीं देती और अपनी बात पर अडिग रहती है। राजा उसे भले बुरे शब्द भी कहते हैं। उससे प्रार्थना भी करते हैं कि श्री राम वन को न भेजे जाएं क्योंकि उनका जीवन ही श्री राम अधीन है। राम को वन भेज देने से कैकेयी को जो कलंक और राजा को जो पश्चाताप मिलेगा, वह उनकी मृत्यु हो जाने पर भी नहीं मिटेगा। अन्त में राजा शोकाकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वे राम-राम की रट लगा रहे हैं। इस प्रकार राजा को विलाप करते-करते सुबह हो गई। राज दरबार में भीड़ लगी पर राजा न पहुँचे। इस पर मंत्री सुमंत महल में आए। उन्होंने राजा की दयनीय स्थिति को देखा। राजा कुछ न बोले। कैकेयी ने सुमंत से कहा—तुम राम को यहाँ भेज दो। सुमंत के साथ श्री राम शीघ्र ही कैकेयी के महल में पहुँचे। श्री राम को शीघ्र में आया हुआ देखकर सभी के मन में विषाद की लहर दौड़ गई।

कैकेयी के महल में पहुँचकर श्री राम ने पिता की दयनीय दशा देखी। राजा के रूप को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वे अन्तिम साँस ले रहे हों। राजा ने उन्हें देखा परन्तु कुछ बोले नहीं। कैकेयी ने उनसे दो वर मांगने की बात बता दी। इस पर श्री राम ने प्रसन्नता प्रकट की। राजा ने राम को हृदय से लगा लिया।

श्री राम अपनी माता कौशल्या के पास जाते हैं और उन्हें बताते हैं कि मैं 14 वर्ष बन में रहकर पिता के वचनों को पूर्ण कर फिर लौटकर तुम्हारे चरणों के दर्शन करूँगा। तुम मन को दुःखी न करो और मुझे वन जाने की आज्ञा दो। इस पर माता कहती है कि यदि पिता की आज्ञा है तो माता को बड़ा मानकर मत जाओ और यदि माता-पिता दोनों की आज्ञा हो तो सहर्ष जाओ। तभी वहाँ सीता जी भी आ जाती हैं। श्री राम उन्हें घर पर ही रहने को

कहते हैं तथा वन का भयावह चित्रण करते हैं ।

उनकी बात सुनने के पश्चात् सीता जी भी अपना अभिमत प्रकट करती हैं तो श्री राम उनको अपने साथ चलने की आज्ञा दे देते हैं । जब श्री राम के वन गमन का समाचार लक्ष्मण को मिलता है तो वे भी व्याकुल होकर आते हैं और उनके साथ चलने का हठ करते हैं । श्री राम उन को भी घर पर रहने के लिए समझाते हैं । लक्ष्मण अत्यंत व्याकुल होकर कहते हैं कि हे स्वामी ! हे दीनबन्धु ! मेरे तो केवल आप हैं । धर्म और नीति का उपदेश तो उसे करना चाहिए जिसे कीर्ति विभूति या सद्गति प्यारी हो, किन्तु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में प्रेम रखता हो उसे न छोडना चाहिए । तब श्री राम को हठात् लक्ष्मण को भी वन चलने की आज्ञा देनी पड़ी । वे जब अपनी माता सुमित्रा से आज्ञा लेने गए ते उन्होंने सहर्ष आज्ञा दे दी और लक्ष्मण को पिता तुल्य राम और माता तुल्य सीता के चरणों में समर्पित कर दिया । वन जाने से पूर्व राम, लक्ष्मण और सीता अन्त में राजा दशरथ से विदा लेने जाते हैं । राज दशरथ तीनों को वन के लिए तैयार देखकर बहुत व्याकुल होते हैं ।

वन यात्रा का पहला दिन तमसा नदी के तट पर बीता । रात के दो पहर बीत जाने पर श्री राम के आदेशानुसार सुमंत इस प्रकार रथ चलाते हैं कि कोई भी उसके निशान देखकर उनके पीछे-पीछे न आ सके । शृंगवेश्वर में उनकी भेंट निषादराज गूह से होती है । उसके स्नेहपूर्ण व्यवहार का आभार स्वीकार कर श्री राम किसी शीशम के वृक्ष के नीचे रात काट देते हैं ।

श्री राम के चरणों में केवट का अपार प्रेम है । वह कुछ दिन उनके चरणों की सेवा कर अपने जीवन को सफल बना लेना चाहता है । श्री राम भी उसे अपने साथ ले लेते हैं । वे चारों प्रयाग की ओर प्रस्थान करते हैं । वे वट वृक्ष के नीचे रात काटते हैं और प्रातः प्रयागराज आ जाते हैं । लक्ष्मण, सीता और निषाद को राम तीर्थराज प्रयाग की महिमा को बताते हैं । इसके पश्चात् वे भरद्वाज मुनि के आश्रम में आ जाते हैं । मुनि उन्हें हृदय से आशीर्वाद देते हैं ।

श्रीराम सुन्दर वन, तालाब एवं पर्वतों को देखते हुए वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे । वाल्मीकि जी ने बार-बार पूछने पर श्रीराम ने उनको वनवास की कथा सुनाई । इसके उपरान्त श्रीराम उनसे किसी उपयुक्त स्थान

के विषय में पूछते हैं जहाँ पर पर्णकुटी बनाई जा सके। वाल्मीकि जी श्रीराम के ब्रह्मत्त्व को जानते हुए उनको 14 स्थानों के विषय में बताया। इसके पश्चात् इसी वार्तालाप में वे चित्रकूट के विषय में बताते हैं कि वह गंगा के पार्श्व में अनेक वन पर्वत, मृग एवं पक्षियों से घिरा चित्रकूट अत्रि आदि मुनियों की तपस्या स्थली है। श्रीराम वाल्मीकि से विदा लेकर चित्रकूट की ओर चल पड़ते हैं। वहाँ पर देवताओं कोल किरात (जंगली जाती के लोग) आदि का रूप धारण कर उनकी पर्णशाल का निर्माण किया था।

इसके पश्चात् निषाद जब अपने घर लौटता है तो उसे पृथ्वी पर दुःखी अवस्था में पड़े हुए मंत्री सुमन्त मिलते हैं। मंत्री सुमन्त अयोध्या पहुँच कर राम-लक्ष्मण सीता के वनगमन की सारी रामकहानी महाराजा दशरथ को सुनाते हैं। अतः यह सुनकर महाराजा दशरथ बहुत व्याकुल हो जाते हैं। उन्हें अपने तीर से श्रवण कुमार की मृत्यु का स्मरण एवं उनके माता-पिता द्वारा दिया गया शाप याद आ जाता है। राजा के प्राण कंठगत हो जाते हैं। उनकी मरण वेला देखकर कौशल्या ने धैर्य धारण कर कुछ संतोष दिलाने की बात की। परन्तु महाराजा दशरथ 6 बार राम कहकर 7वें दिन अपने प्राण त्याग देते हैं। इससे सारी अयोध्या में शोक छा जाता है। इसके पश्चात् मुनि वसिष्ठ आकर राजा के शव को तेल के कड़ाहे में रखकर भरत को बुलाने के लिए दूतों को भेज देते हैं।

कैकेयी ने पुत्र के आगमन पर हर्ष व्यक्त किया और उनकी आरती उतारी। भरत के पूछने पर रानी ने सारी रामकथा सुना दी। सारे अनर्थों का मूल कारण स्वयं को जानकर भरत को बहुत अधिक आत्मग्लानि होती है। उसी समय कुबरी को आया हुआ देखकर शत्रुघ्न ने उसका कूबर ही तोड़ दिया।

गुरु वसिष्ठ ने शुभ दिन देखकर मंत्रियों और सभासदों को बुलवाया और उसके पश्चात् भरत तथा शत्रुघ्न को बुलवाकर भरत से राजकाज संभालने के लिए कहा। भरत ने भरी सभा में स्पष्ट किया कि मेरी भलाई केवल सीतापति की सेवकाई है। उन्होंने दूसरे दिन वन में राम-सीता से भेंट करने का निश्चय किया। दूसरे दिन नगर को योग्य सेवकों को संभलवा कर वे राज्याभिषेक के लिए सभी आवश्यक वस्तुएं लेकर परिजन, पुरजन तथा

चतुरंगिणी सेना के साथ चल दिए ।

कुछ दूर जाकर निषाद ने चित्रकूट गिरि की ओर संकेत किया जिसके निकट गंगा नदी के तट पर सीता जी सहित दोनों भाई निवास करते हैं । उस पर्वत को देखकर सभी को अपार प्रसन्नता होती है । भरत ने सबके साथ उदय गिरि का दण्डवत् नमस्कार किया । दो कोस चलकर मार्ग में ही रात बिताई और दूसरे दिन चित्रकूट के समीप आ गये । उधर रात में श्री राम ने भरत के आने का स्वप्न देखा था । प्रातःकाल स्नानादि कर के वे ऋषियों के साथ बैठे ही थे कि आकाश में उड़ती हुई धूल दिखाई दी । कोल किरात (जंगली जाति के लोग) श्री राम को सेना सहित भरत के आगमन की सूचना देते हैं । श्री राम का हृदय शोक और व्याकुलता से भर जाता है । वे अपने अन्तस् में भरत के अपार स्नेह और भक्ति को जानते हैं । परन्तु लक्ष्मण को भरत के इस आचरण पर संदेह हो जाता है ।

दशरथ की मृत्यु का समाचार पाकर श्री राम भी रो पड़े । सारा रनिवास सीता, लक्ष्मण, भरत आदि सभी अपार दुःख में डूब गये । श्री राम ने विधिवत् रूप से पिता का श्राद्ध कार्य किया । भरत ने बड़ी मधुर वाणी में अपना पक्ष प्रस्तुत किया । श्री राम ने उनकी प्रति की रक्षा करते हुए रघुकूल की सत्यता के लिए प्राण त्याग करने वाले पिता की दुहाई दी । देवताओं को चिंता होती है कि कहीं श्री राम लौट न जाएं । अतः उन्होंने भरत की बुद्धि पर मायाजाल फैलाने का प्रयास किया परन्तु सरस्वती ने उनकी बात न मानी । भरत ने बार-बार श्री राम से अयोध्या लौट चलने का आग्रह किया किन्तु उनके संकोच के देखकर वे स्वयं ही इस बात के लिए तैयार हो गये कि 14 वर्ष की अवधि तक वे स्वयं ही अयोध्या की सेवा करेंगे । इसके लिए उन्होंने अवलम्ब स्वरूप राम की चरणपादुका मांगी । राम ने सहर्ष उन्हें दे दी । भरत ने उन्हें शिरोधार्य किया ।

भरत ने श्री राम की चरणपादुका लेकर विदाई ली । सभी लोग आदर और सम्मान प्रकट कर लौटने की तैयारी करने लगे । राम, लक्ष्मण और सीता को छोड़कर अन्य सभी लोगों की स्थिति बड़ी दयनीय हो रही है । सभी लोग चौथे दिन अयोध्या में जा पहुँचे । राजा जनक भी चार दिन वहीं रहे, उसके पश्चात् वे तिरहुत चले गये । भरत ने अयोध्या के सिंहासन पर चरणपादुका

आसीन की और स्वयं राज्य के समस्त लोगों से उदासीन होकर नन्दी ग्राम में निवास करने लगे ।

21. **श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि ।**

बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि ।। श्लोक 3-दोहा

अर्थ – सरोज=कमल, रज=धूलि, मुकुर=दर्पण, बरनउं=वर्णन करता हूँ, विमल=उज्ज्वल, स्वच्छ, दायक=देने वाला ।

कवि कहता है कि श्री गुरु जी के चरण रूपी कमलों की रज से अपने मन रूपी दर्पण को साफ करके मैं रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीराम के उज्ज्वल यश का वर्णन करता चाहता हूँ, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों फलों को देने वाला है । भाव यह है कि मन रूपी दर्पण पर अज्ञान की धूलि जम रही है । इसे गुरुकृपा से ही साफ किया जा सकता है । जिससे कि श्रीराम के अथाह गुणों को आत्मसात् किया जा सके और उन्हें पुनः काव्य में व्यक्त किया जा सके ।

22. **रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ[1] बरु[2] बचनु न जाई ।।** –27.2

अर्थ–जाहुँ=जाए, बरु–भले ही

जिस समय कैकेयी राजा दशरथ द्वारा दिये गये दो वर माँगती है और राजा दशरथ कहते हैं कि दो न चार वर ले लो । उस समय राजा दशरथ कैकेयी से कहते हैं कि रघुकुल में यह प्रथा सदा से चली आई है कि रघुवंशी के प्राण भले ही चले जाए परन्तु दिये हुये वचन का निर्वाह करता है ।

23. **सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का । देहु एक बर भरतहि टीका ।।**

मागउँ दूसरा बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ।। 28.1

अर्थ–भावत=भाने वाला, जी=मन, टीका=राजतिलक, कर जोरी= हाथ जोड़ कर, पुरबहू=पूर्ण करो, नाथ=स्वामी, मनोरथ=मन की बात ।

महारानी कैकेयी ने महाराज दशरथ से कहा–हे प्राणप्रिय ! मेरे मन को अच्छा लगने वाला वर सुनो । एक में तो मैं यह मांगती हूँ कि भरत को राज्य तिलक कीजिए । दूसरा वरदान मैं दोनों हाथ जोड़ कर मांगती

हूँ । हे स्वामी ! आज मेरी इच्छा को पूरी कीजिए ।

24. तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनवासी ।

सुन मृदु वचन भूप हियँ सोकू । ससि कर छूअत बिकल जिमि कोकू ।। 28.2

तापस=मुनि, विसेषि=विशेष, नियम से, ढंग से, उदासी=उदासीन विरक्ति=त्याग, बरिसु=वर्ष, मृदु=कोमल, भूय=राजा, सोकू=शोक, ससिकर=चन्द्रमा की किरण, विकल=व्याकुल, जिमि=जैसे, कोकू=चक्रवाक ।

इसके पश्चात् महारानी कैकेयी ने महाराज दशरथ से दूसरा वर मांगा कि तपस्वी वेष में विशेषकर उदासियों की रीति से श्री राम 14 वर्ष तक वन में निवास करें । भाव यह है कि कैकेयी ने पहले वरदान के रूप में भरत के लिए राजतिलक मांगा क्योंकि यदि वह दूसरा वर पहले मांग लेती तो संभवतः उसे दूसरा वर नहीं मिलता । श्री राम के लिए उसने तापस वेष इसलिए मांगा ताकि उन्हें कहीं और का राजा न बना दिया जाए । यदि वे राज्य से अलग हो जायेंगे तो निश्चय ही भरत अपना राज्य जमा सकेंगे । कैकेयी के ऐसे मीठे और मधुर वचन सुनकर राजा के हृदय में बहुत शोक हुआ जैसे चन्द्र किरण के स्पर्श से चकवा पक्षी व्याकुल हो जाता है । कैकेयी महाराजा दशरथ से कहती है कि मैंने देवासुर संग्राम में आप के प्राण बचाये थे । अतः अब आप भी मेरे प्राणों की रक्षा कीजिए, क्योंकि यदि दोनों वर आपने तुरंत न दिये तो मैं प्राण त्याग दूँगी ।

25. जिऐ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना ।।

कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ।। 32.1

अर्थ–जिऐ–जी सके, मीन=मछली, वरु=भले ही, बारि=जल, विहीना=बिना, मनि=मणि, फनिकु=सर्प, दीना=दीन होकर ।

मछली चाहे बिना पानी के जीवित रह जाए, सर्प भले ही बिना मणि के दुःख से हीन होकर जीवित रहे । मैं तुम्हें अपने स्वभाव या अपने बारे में बता दूं कि मेरे मन में कोई छल-कपट का भाव नहीं । मेरा जीवन बिना राम के नहीं रह सकता । जैसे मछली बिना पानी के और सर्प

बिना मणि के जीवित नहीं रह सकते हैं उसी प्रकार मैं भी बिना राम के जीवित नहीं रह सकता हूँ ।

26. **सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।।**
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।। 40.4

अर्थ – सोई = वही, सुत = बेटा, बड़भागी = बड़ा भाग्यवान्, अनुरागी = प्रेमी, तनय = पुत्र, तोषनिहारा = संतुष्ट करने वाला, दुर्लभ=कठिन, विसेषि=विशेष रूप से, हित=भलाई, तेहि महं=इसमें, पितु=पिता, आयसु=आज्ञा, बहुरि=फिर, समत=सम्मति, तोर=तेरी ।

श्रीराम सब प्रकार के दूषणों से रहित निर्मल वचन बोले । उनके वचन इतने कोमल, मधुर है कि लगता है मानो वे वाणी के आभूषण हों अर्थात् वाणी उनसे ही शोभा पाती है । हे माता कैकेयी ! सुनो वही पुत्र बड़ा भाग्यवान् होता है जो माता-पिता के वचनों में प्रेम रखता हो अर्थात् उनका कहना माने तथा उनके वचनों की मर्यादा का पालन करे । हे माता ! संसार में ऐसा पुत्र मिलना कठिन है, जो माता-पिता को संतुष्ट करने वाला हो । हे माता ! वन जाने पर मुनिगणों से विशेष रूप से भेंट होगी इसमें तो मेरा सब प्रकार से भला ही भला है । ऐसा करने में पिता की आज्ञा और आप की सम्मति है । भाव यह कि ऐसा अवसर सर्वश्रेष्ठ है जिसमें पिता की आज्ञा का पालन भी हो जाए और संतों का समागम भी हो जाए ।

27. **पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ।।** 52.3

अर्थ–कानन=बन, मोर=मेरा, बड़=बड़ा, काजू=काम ।

माता कौशल्या के ऐसे कृपा युक्त वचन सुनकर ऐसा लगा मानो प्रेम रूपी कल्पवृक्ष के पुष्प हों । वे सुख रूपी मंकरद से भरे हुए थे और वे श्री के मूल थे । उन वचन रूपी फूलों को देखकर भी श्रीराम का मन रूपी भौंरा उन पर न फूला अथवा न लुभाया । भाव यह है कि माता कौशल्या के स्नेह युक्त वचन सुनकर राम के मन में एक बार भी यह बात नहीं आई कि उनका क्या राज्यभिषेक होना था क्योंकि वे पिता की आज्ञा पालन रूपी परम धर्म को छोड़कर और कुछ नहीं चाहते हैं ।

धर्म की धुरी को धारण करने वाले अथवा धर्म का भार उठाने वाले धर्मात्मा राम ने अपने धर्म की गति को पहचानकर माता से अत्यन्त कोमल शब्दों में कहा कि पिता ने मुझे वन का राज्य दिया है जहाँ सब तरह से मेरे लिये बड़ा काम है अथवा जहाँ रहकर मुझे बड़े-बड़े कार्य करने हैं। श्री राम के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। कि वे अयोध्या का राज्य छूट जाने पर दुःखी नहीं है तथा पिता के वचनों की रक्षा को ही अत्यधिक महत्त्व दे रहे हैं तथा इसे अपना परम धर्म मानकर पूरा करना चाहते हैं।

28. **राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू।।**

लिखत सुधाकर या लिखि राहू। बिधि गति दाम सदा सब काहू।। 54.1

अर्थ—जाहू=जाओ, दुहू भाँति=दोनों तरह, उर=हृदय, दारुन=कठिन, दाहू=दाह, जलन, सुधाकर=चन्द्रमा, राहू=एक ग्रह का नाम, गति=चाल, दशा। वाम=टेड़ी, काहू=के लिए।

मंत्री के पुत्र से सारा वृत्तान्त सुनने के पश्चात् कौश्लया की अवस्था अज़ीब सी हो गई। न वह उनको रख सकीं और न यह कह सकीं कि तुम जाओ। दोनों ही प्रकार से उनके हृदय में कठिन दाह होने लगा। घर में रखने से धर्म की हानि है और जाने की कहूँ तो स्नेह की हानि है। यदि प्रेम का अभाव हो तो तभी कोई ऐसा कह सकता है। मन ही मन यह सोचती है कि उस विधाता की चाल सदा से ही टेढ़ी होती आई है। वह चन्द्रमा लिखते-लिखते राहू लिख गया। भाव यह है कि चन्द्रमा अर्थात् राज्य लिखते-लिखते राहू अर्थात् वनवास लिख गया। चन्द्रमा या सुधाकर सबको सुख देता है और राहू सबको दुःख। यहाँ तक कि चन्द्रमा का ही लोप कर देता है। यहाँ पर कौशल्या की मानसिक स्थिति का वर्णन हुआ है और उनकी स्थिति को कवि ने सांप-छछूंदर की गति सी कहा है। यह दृष्टांत बड़ा सटीक है।

29. **धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।** 94.3

अर्थ—आगम=शास्त्र, निगम=वेद, पुरान=पुराण, बखाना=कहा है।

श्री राम सुमंत को धर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं कि कृपा करके आप

वही कीजिए जिससे अयोध्या अनाथ न हो। यह सुनकर श्री राम ने मंत्री को उठाया और उन्हें समझाते हुए कहा—हे तात! आप धर्मज्ञ है क्योंकि आपने सभी धर्म मतों को खोजा है अथवा आपने सिद्धान्तों की खोज बीन कर समझा है। भाव यह है कि धर्म के बारे में आपको क्या समझाना है? वे धर्मज्ञ राजाओं का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि राजर्षि शिवि, महर्षि दधीचि तथा राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों दुःख सहन किये हैं। सुमानी राजर्षि रतिदेव तथा हैहयराज बलि ने भी अनेक कष्टों को सहन करके धर्म को धारण किया। सत्य के समान अन्य कोई धर्म नहीं है अथवा धर्म की पूर्ति से ही सत्य की रक्षा होती है ऐसा शास्त्रों में, वेदों में तथा पुराणों में कहा गया है।

30. **करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।**

तब लगि सुखु सपनेहुँ नहिं किएँ कोटि उपचार।। दोहा 107

अर्थ—छाडि=छोड़ कर, लगि=जब तक, जनु=व्यक्त, कोटि—करोड़ो उपाय।

जिस समय राम, लक्ष्मण, सीता, भारद्वाज मुनि के आश्रम पहुँचकर कंदमूल फल आदि खाकर तृप्त हो जाते हैं। भारद्वाज श्री राम को कहते हैं कि मेरी सारी आशाएं पूर्ण होगी। उस समय भारद्वाज मुनि श्रीराम से कहते हैं कि जब तक मानव कर्म, वचन और मन से छलकपट को छोड़कर तुम्हारा भक्त नहीं बन जाता तब तक करोड़ों उपाय करने पर भी उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। कवि के कहने का भाव यह है कि राम और उसकी भक्ति व्यक्ति को मन, वचन और कर्म के निर्मल होने से ही प्राप्त होती है। जैसे कबीर लिखते हैं—

कबीरा मनु निरमलु भया जैसे गंगा नीर।

पाछे लागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर।।

श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृ. 1367

31. **आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें।।**

उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।। 122.1

अर्थ – पाछे = पीछे, तापस = तपस्वियों, काछे = बनाये हुए, बिराजत= शोभायमान, उभय = दोनों, सोहति = शोभायमान, बिच= बीच ।

यहाँ पर कवि ने राम लक्ष्मण और सीता के चलने की रीति पर प्रकाश डालते हुए लिखता है कि तपस्वियों के से वेश को धारण किये हुए आगे-आगे राम और उनके पीछे-पीछे लक्ष्मण चले जा रहे हैं । राम और लक्ष्मण के बीच सीता जी किस प्रकार शोभायमान हो रही है उसके लिए कवि उपमान लाता है कि जैसे ब्रह्म और माया के बीच में जीव शोभा पाता है । भाव यह है कि इस दार्शनिक शब्दावली के अनुसार ब्रह्म की दृष्टि जीव पर नहीं पड़ती जो उसके पीछे-पीछे रहता है । किन्तु जीव की छवि उस पर सदैव रहती है । क्योंकि माया उसके आगे-आगे रहती है ।

32. **सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि केहेउ मुनिनाथ ।**

हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपयसु बिधि हाथ ।। दोहा 171

अर्थ–भावी=होनहार या भाग्य, प्रबल=बलवान्, बिलखि=दुःखी होकर, केहेउ=कहा, मुनिनाथ=वशिष्ठ मुनि, विधि=विधाता ।

जिस समय भरत ने अपने पिता राजा दशरथ का मृतक संस्कार कर दिया । इसके बाद अन्य लोगों के साथ वसिष्ठ मुनि ने भरत और शत्रुघ्न को बुलाया और उन्होंने कहा कि राजा दशरथ धर्म का पालन करते-करते अपना शरीर त्याग गये और वे बातें करते-करते शोक सागर में डूब गये । उस समय वशिष्ठ मुनि दुःखी होकर भरत जी से कहते हैं– सुनो भरत ! यह होनहार या भाग्य बड़ा बलवान् होता है । हानि लाभ, जीवन मरण और यश अपयश यह सब परमात्मा के हाथ में हैं न कि व्यक्ति के । इन पर व्यक्ति का कोई भी वश नहीं चलता । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

कोई लाख करे चतुराई, कर्म का लेख मिटे न भाई ।
एक दिन इन क़िस्मत के कारण वन में गये रघुराई ।।

33. **सरुज सरीर बादि बहू भोगा । बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा ।**
जायँ जीव बिनु देह सुहाई । बादि मोर सबु बिनु रघुराई ।। 177.3

अर्थ–सरुज=रोगी ।

भरत जी मुनि वसिष्ठ जी की बातें का उत्तर देते हुए कहते हैं कि रोगी शरीर के लिए बहुत से प्रकार के विषय भोग व्यर्थ हैं तथा बिना भगवद् भक्ति किये जप और जोग भी व्यर्थ ही हैं । जीव के चले जाने पर उसके (जीव) के बिना शरीर कहाँ सुहाता है इसी प्रकार मेरे लिए तो राम के बिना सब व्यर्थ है । यहाँ पर भरत जी अपनी बात प्रमाणों के एवं तर्क के साथ कहते हैं । इसमें उनकी बुद्धिमत्ता झलकती है ।

34. **जरउ सो संमति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।**
सनमुख होत जो रामपद करै न सहस सहाइ ।। दोहा 185

अर्थ–जरउ=जल जाय, सो=वे, सदन=घर, सुहृद=मित्र, सन्मुख= सामने, सहस्र=हज़ारों, सहाई=सहायता ।

जिस समय भरत मुनि वसिष्ठ आदि अन्य लोगों ने श्रीराम आदि के दर्शन के लिये वन जाने का निर्णय कर लिया । सब लोग समझने लगे कि भरत का जीवन धन्य है क्योंकि अब हम श्रीराम के दर्शन करेंगे । उस समय तुलसीदास जी कहते हैं कि वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता-पिता और भाई चाहे सब जल जाय या नष्ट हो जाये यदि ये श्रीराम के चरणों के सम्मुख होने से हज़ारों प्रकार से सहायता न करे या बाधा डाले । अतः इन भौतिक वस्तुओं से रामभक्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं यहाँ भरत की अनन्य भक्ति दिखाई गई है । क्योंकि प्रभु का अनन्य भक्त वही होता है जो प्रभु की निष्काम भक्ति करे । ऐसी भावना भरत में दृष्टिगोचर होती है । भरत का भाव इतना प्रभावशाली है कि अयोध्या धन सम्पत्ति आदि का ध्यान छोड़ कर सब वनगमन के लिए तैयार हो गये ।

35. **करमनास जलु सुरसरि परई । तेहि को कहतु सीस नहिं धरई ।।**
उलटा नामु जपत जगु जाना । बालमीकि भए ब्रह्म समाना ।। 193.4

अर्थ–करमनास=कर्मनाश नदी का नाम, दहई=गिरता है ।

यह उस समय का प्रसंग है जब भरत जी का निषादराज से मधुर मिलन होता है। उस समय तुलसीदास जी उपदेश देते हुए कहते हैं कि

कर्मनाशा नदी का पानी जब गंगा में पड़ जाता है तब उसको कौन अपने सिर पर धारण नहीं कर लेता। सारा संसार जानता है कि राम का उल्टा नाम जपते-जपते बाल्मीकि भी ब्रह्म के समान हो गये। इसमें राम नाम का महात्म्य बताया गया है।

36. **करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।** 218.2

अर्थ–जस=जैसा, तस=वैसा, चाखा=भोगता है।

यह उस समय का प्रसंग है जब बृहस्पति इन्द्र से कहते हैं कि श्रीराम को अपना सेवक परमप्रिय है। वे अपने सेवक की सेवा में सुख मानते हैं और सेवक के साथ वैर करने से बड़ा भारी वैर मानते हैं। वस्तुतः परमात्मा सम है वह किसी से न प्रेम रखते हैं न रोष। इस संसार में कर्म ही प्रधान्य है जो व्यक्ति जैसा करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में लिखा है–

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।

जो किसी व्यक्ति ने शुभ या अशुभ कर्म किये हैं उनका फल अवश्य ही उसे भोगना पड़ेगा। संसार में इसके बचने को कोई भी उपाय नहीं है। अतः एक उर्दू शायर ने लिखा है–

सांसों का क्या भरोसा रुक जाये कब कहाँ पर।

करजा काम ऐसा, जहाँ में हो नाम तेरा।।

37. **अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ ली कह सबु कोऊ।**
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध दे बुध नाहीं।।
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने।।
कही तात तुम्ह नीति सहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई।। 1.2
जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधु सभा जेहिं सेई।
सुनहु लखन मल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच मँह सुना न दीसा।।
भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छरि सिंधु बिनसाई।। 230(1-4)-231

जाते। देवताओं के ऐसे वचन या आकाशवाणी सुनकर लक्ष्मण जी संकुचा गये। राम और सीता ने उनका आदरपूर्वक सम्मान किया। राम लक्ष्मण कहने लगे हे तात! तुमने अच्छी नीति या समयानुसार नीति की बात कही है। हे भाई! मनों में सबसे कठिन राज्यमद है। इसे पीकर वे ही लोग मतवाले हो जाते हैं। जिन्होंने सत्संग नहीं किया है। हे लक्ष्मण! सुनो, भरत के समान, उत्तम पुरुष इस दृष्टि में न कहीं देखा गया है। अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है? ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं हो सकता है। जैसे क्या कभी काँजी (खट्टे पानी) की बूंदों से क्षीरसागर नष्ट हो सकता है?

3. अरण्यकाण्ड

श्री राम, लक्ष्मण और सीता के परामर्श से वन को चल दिये और अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ अत्रि मुनि ने इनका बहुत कुछ आदर किया। बहुत से कंद, मूल, फल खाने को दिये। अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया थी जोकि बड़ी ही धर्मात्मा थी। सीता ने उनको प्रणाम किया। अनसुया ने उनको आशीर्वाद देने के उपरांत बहुत प्रकार से स्त्रियों के धर्म का उपदेश दिया।

श्री राम को उस राक्षस के ऐसे गर्व के वचन सुन कर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—अरे नीच! अब मैंने जाना कि तेरे सिर पर काल खेल रहा है। तू अब अवश्य मारा जायेगा। अब मैं तुझको जीता नहीं छोड़ूँगा। इतना कह कर श्रीराम ने बड़ी सावधानी से उस राक्षस को निशाना बना कर, एक दम ही सात बाण ऐसे जोर से मारे कि उसके शरीर को पार कर दूसरी ओर भूमि पर जा गिरे। तीर लगते ही विराध बड़ा व्याकुल हुआ और क्रोध में आ, सीता को धरती पर बिठा, त्रिशूल हाथ में ले, मुँह फैला कर श्री राम और लक्ष्मण की ओर दौड़ा। इधर इन दोनों भाइयों ने भी उस के ऊपर तीरों की वर्षा आरम्भ कर दी। उधर विराध ने हँस कर जम्हाई ली तो उस के शरीर से सब तीर बाहर निकल कर आ गये। उन तीरों से वह राक्षस नहीं मरा। अब वह राक्षस त्रिशूल उठा कर श्री राम की ओर दौड़ा और पास आकर मारना ही चाहता था कि तुरन्त श्री राम ने भी अपने पैने-पैने बाणों से इसका त्रिशूल काट दिया। फिर ये दोनों भाई भी तलवार लेकर उसको मारने के लिए दौड़े। उस राक्षस ने दोनों को पकड़ कर कंधों पर बैठा लिया और कहीं दूर फेंकने के लिए लेकर चल दिया। इस प्रकार उस राक्षस को मार डाला।

अब श्री राम सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर शरभंग ऋषि के आश्रम की ओर चल दिये। जब आश्रम में पहुँचे तब तीनों ने मुनि को प्रणाम किया और आज्ञा पाकर बैठ गये। शरभंग मुनि ने श्री राम से कहा कि आप के आने का समाचार हम अपने तपोबल से पहले ही जान चुके थे। यह भी निश्चय ही था कि आप आने वाले हैं। आपके दर्शनों के ही लिए मैं अभी यहाँ ठहरा हुआ हूँ नहीं तो मैं कभी का स्वर्ग चला गया होता। आप ने बड़ी कृपा की कि जो

हमें दर्शन दिया। अब मैं सब कर्मों से छूट चुका हूँ। अब, आप के देखते ही देखते, मैं योग द्वारा इस शरीर को छोड़ कर स्वर्ग को जाता हूँ। आप यहाँ से सुतीक्ष्ण के आश्रम को जाएं। वहाँ आप को सब प्रकार का सुख मिलेगा। इतना कह कर मुनि ने समिधायें एकत्रित की और यज्ञ किया तथा पूर्णाहुति में आप ही बैठ गये। बैठते ही उने शरीर को अग्नि ने भस्म कर दिया।

अनुसया कहती है कि मैं तो आप का इस वन में आना अच्छा नहीं जानती। क्योंकि आप दोनों भाई शस्त्र बाँधे हुए हैं और क्षत्रिय तो हैं ही। क्षत्रिय के पास शस्त्र और अग्नि के पास सूखा ईंधन हो तो अवश्य वे इनका बल बढ़ाते हैं। मैं आप को कुछ शिक्षा नहीं करती, मैं तो आपके प्यार से ऐसी बात कहती हूँ। अतः आप बिना अपराध किसी के मारने का विचार न कीजिए। जो आप कहे कि फिर क्षत्रियों को शस्त्र धारण करने से क्या मतलब, तो वन में विचरते हुए क्षत्रियों का धनुष धारण करना, निरपराध जीवों के मारने को नहीं वरन् वन में जो दुःखी लोग हैं उनकी रक्षा करने के लिए है। इसलिए आप हम दोनों की ही रक्षा कीजिए।

श्री राम, लक्ष्मण एवं सीता सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँचे। वहाँ सुतीक्ष्ण जी से मिलकर और उनके बताये हुए मार्ग से फिर अगस्त्य मुनि के आश्रम को चल दिये। जब वहाँ पहुँचे तब इनको देख कर अगस्त्य मुनि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अनेक फल, मूल, कंद इन्हें खाने को दिये। ये रात भर वहीं रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब श्री राम ने अपने रहने के लिए अगस्त्यजी से किसी अच्छे स्थान का पता पूछा, तो उन्होंने सब ऋतुओं में सुख देने वाली 'पंचवटी' नामक स्थान, जो दण्डक वन में था, बता दिया। अब अगस्त्य मुनि से विदा होकर श्री राम उनके बताये हुए मार्ग से पंचवटी पर पहुँच गये। पंचवटी पर पहुँच कर लक्ष्मण जी ने एक बहुत सुन्दर कुटी बनाई। उस कुटी को देखकर श्री राम बहुत प्रसन्न हुए और तीनों उसमें सुख से रहने लगे।

शूर्पणखा श्री राम पर मोहित हो गई और कहा कि मैं आपसे गंधर्व विवाह करना चाहती हूँ। तब श्री राम ने कहा–हे सुमुखी ! मैं विवाहित हूँ, मेरी पत्नी सीता मेरे साथ है और उसके अतिरिक्त सारी स्त्री जाति मेरी माता,

बहन और पुत्री के समान है। अब वह लक्ष्मण की ओर फिरी क्योंकि वे भी सुदर्शन एवं युवा थे। उसने लक्ष्मण से भी वही बातें दोहरायी। लक्ष्मण ने इस प्रस्ताव का तर्कसंगत उत्तर दिया। मैं तो राम का छोटा भाई और सेवक हूँ। ऐसी अनुचित बातें आप को शोभा नहीं देती। वह पुनः श्री राम के निकट जाकर बोली—इस दुर्बल और शोभाविहीन अपनी पत्नी को त्याग दो अन्यथा मैं इसका वध कर दूँगी। श्री राम ने गम्भीर होकर लक्ष्मण से कहा—तात! तुम इस स्त्री को यहाँ से शीघ्र ले जाओ अन्यथा हमको यह हानि पहुँचा सकती है। यह सुनते ही शूर्पणखा व्यग्र हो उठी और उसने श्री राम के पास खड़ी मुस्कराती हुई सीता पर प्रहार कर दिया। स्थिति को बिगड़ते देख श्री राम ने लक्ष्मण से इसके नाक, कान काट कर सुन्दरता नष्ट करने का आदेश दिया। लक्ष्मण ने आदेश पाकर शूर्पणखा के नाक, कान काट दिये अर्थात् उसका अपमान किया।

अब राक्षसों की सेना को आते देख कर श्री राम लक्ष्मण से बोले—भाई, देखो! राक्षसों के आगे कैसे बुरे-बुरे शकुन दिखाई पड़ रहे हैं। यहाँ मेरी दाहिनी भुजा फड़क रही है। मेरी समझ में तो आज बड़ा भारी युद्ध होगा। मेरी विजय होगी और राक्षस मारे जायेंगे। अब तुम सीता को पर्वत की गुफा में ले जाओ।

जब शूर्पणखा ने देखा कि अकेले ही श्री राम ने सारी सेना मार डाली और खर, दूषण दोनों भाई भी मारे गये तब वह रोती बिलखती हुई लंका में अपने भाई रावण के दरबार में गई और बड़ा क्रोध कर रावण से बोली कि हे रावण! बड़ी लज्जा की बात है कि तुम यहाँ बैठे हो। तुम जैसे बेपरवाह राजाओं का राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। देखो! मेरा क्या हाल है? इस का तुम्हें कुछ समाचार नहीं। यह सुनकर रावण ने शूर्पणखा से पूछा कि ऐसा कौन है जिसने तुम्हारा यह हाल किया है और सब राक्षस मार डाले हैं? सब देवता लोग तो इकट्ठे होकर नहीं आ गये? शूर्पणखा ने श्री राम का सब पता बता दिया और कहा कि उनकी लम्बी-लम्बी भुजाएं और बड़ी-बड़ी आँखें हैं।

रूप में उनके समान दूसरा नहीं है धनुष उनके पास है। उसी से वे सब को मारते हैं।

शूर्पणखा के नाक, कान कटे देखकर खर, दूषण आदि बड़े-बड़े वीर और राक्षसों का मरना सुनकर रावण को बड़ा ही क्रोध आया। सोच विचार कर वह मारीच राक्षस के पास पहुँच कर बोला—हे मारीच! तुमने सुना ही होगा कि हमारे जनस्थान के सब राक्षसों को दशरथ के पुत्र श्री राम ने मार डाला और हमारी बहन शूर्पणखा के नाक कान काट लिये हैं। इस का मुझे बहुत ही शोक है। हे मारीच! श्रीराम ने मेरे निरपराध वीरों को मारा है और मेरी बहन के नाक, कान काटे हैं, इसलिए इसके बदले में मैं उनकी स्त्री सीता को हर लेना चाहता हूँ। इसमें तुम सहायता करो तो बड़ा काम हो। अब एक काम करो तुम एक सोने के हिरन का रूप बना लो और सीता के सामने से निकल कर वन में दूर जा चरने लगो। बस, सीता तुमको देखकर श्री राम से तुम्हें पकड़ने को कहेगी। जब दोनों भाई तुम को पकड़ने के लिए दौड़ेंगे तब पीछे सीता को चुरा कर मैं ले आऊँगा। बस, फिर सीता के वियोग में राम आप ही मर जायेंगे।

मारीच ने रावण को बहुत समझाया। परन्तु उस मूर्ख की समझ में कुछ न आया। यहाँ तक कि रावण मारीच के समझाने से रुष्ठ हो गया। तब मारीच ने विचारा कि जो मैं रावण का कहा न मानूँगा तो वह दुष्ट मुझे मार डालेगा। यह विचार कर मारीच ने रावण से कहा कि अच्छा चलो, जो तुम्हारी इच्छा। हम तो मारे ही जायेंगे परन्तु याद रखो! तुम भी न बच सकोगे और सारी लंका नष्ट हो जायेगी। लाचार हो, मारीच रावण के साथ श्री राम के आश्रम की ओर चला। वहाँ पहुँचकर वह बड़ा सुन्दर हिरन बन गया और श्री राम की कुटी के पास घूमने लगा।

विवश श्री राम, लक्ष्मण को सब समझा कर हिरन को पकड़ने के लिए चल दिये। अब मरने के डर से वह मारीच कभी तो दिखने लगता कभी छिप जाता था। कभी दूर निकल जाता था और कभी पास आ जाता था। श्री राम उसके पीछे-पीछे फिरते थे। जब दूर चले गये तब वह सोने का हिरन साधारण

हिरन का रूप बना कर फिरने लगा। निशाना लगा कर श्री राम ने एक बाण ऐसा मारा कि उसको पार हो गया। तीर लगते ही मारीच उछल कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मरने से पहले उसने श्री राम की वाणी में "हा सीता! हा लक्ष्मण!" बड़े जोर से पुकारा। उस समय श्री राम जी ने सोचा कि इस छलिया की आवाज़ को सुनकर सीता की बड़ी बुरी दशा होगी। लक्ष्मण भी संदेह में तो पड़ ही जायेंगे, परन्तु सीता बहुत घबरायेगी। यह विचार करते करते श्री राम अपनी कुटी की ओर चल दिये।

लक्ष्मण ने सीता से कहा—माता! राम पर कोई विपत्ति नहीं आ सकती। चाहे कोई राक्षस कितना भी धूर्त हो किन्तु वह राम को हानि नहीं पहुँचा सकता। क्या आपने नहीं देखा कि उन्होंने हज़ारों राक्षसों को कैसे नाश किया था? आप व्याकुल मत हो। साहस रखें और शांत रहें। श्रीराम शीघ्र ही सकुशल इस आश्रम में वापिस आ जायेंगे। मैं किसी भी प्रकार तुम्हें अकेली नहीं छोड़ सकता। तुम शोक को दूर कर धीरज से बैठी रहो। अभी राक्षस को मार कर श्रीराम आते होंगे। यह आवाज़ उनकी नहीं वरन् राक्षस की है। इसलिए तुम घबराओ मत। देखो! जब से खर मारा गया है तब से राक्षसों का और हमारा पूरा वैर हो गया है, इसलिए हम तुम्हें अकेली कैसे छोड़ दें?

लक्ष्मण ने सीता को बहुत कुछ समझाया, परन्तु उन्होंने एक भी न मानी। लाचार लक्ष्मण को भी क्रोध आ गया। वे श्री राम की खोज में चल दिये। रावण ने सोचा कि अब देर न करनी चाहिए। राम लक्ष्मण के आने से पहले ही सीता को ले चलना चाहिए। यह विचार कर वह बोला—तुम्हारा तो सब पता हमने जान लिया, अब हमारा हाल सुनो। देखो! जिसके डर से देवता, असुर और मनुष्य सदा काँपते रहते हैं हम वही राक्षसराज रावण हैं। अब हम तुमको लंका में ले जायेंगे और अपनी पटरानी बनायेंगे। अरे मूर्ख! जब तक श्री राम धनुषबाण लिये पृथ्वी पर हैं तब तक मुझे कोई नहीं ले जा सकता। इतना कह कर सीता डर के मारे काँपने लगी।

रावण की यह दशा देख सीता मूर्च्छित हो गई और रावण ने बायें हाथ

से सिर और दाहिने हाथ से पैर पकड़ सीता को रथ में डाल दिया। जब सीता की मूर्च्छा जागी तब "हा राम! हा राम!" कह कर रोने लगीं। रावण ने रथ भगा दिया। फिर सीता विलाप करने लगीं।

इस प्रकार विलाप करती हुई सीता को जब रावण रथ में ले जा रहा था तब इनके रोने की आवाज़ जटायु के कानों में पड़ी। वह जटायु श्री राम की कुटी के पास ही रहता था। रावण शस्त्र लेकर जटायु के मारने को दौड़ा। परन्तु जटायु भी बड़ा बलवान् था। उसने भी अपने बल और साहस से रावण को घायल और विफल कर दिया। वह तलवार लेकर जटायु पर टूट पड़ा। जब रावण ने तलवार से जटायु के अंग काट दिये तब लाचार हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और रावण सीता को बगल में दबा कर आकाश में उड़ता हुआ लंका को चल दिया।

रावण ने सीता जी को अशोक वाटिका में रखा था। इतनी बात सुनकर सीता तिनके को आड़ में खड़ा कर, निर्भय होकर रावण से बोली—हे रावण! महात्मा पुलस्थ के कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम क्यों अपने कुल को दाग़ लगाते हो। देखो! मेरे पति रघुकुल के कुलदीपक हैं। वे बड़े धर्मात्मा और शूरवीर हैं। जब वे मेरा पता पा लेंगे तब झट यहाँ से हम को ले जायेंगे। यह मुझे पूरी आशा है। याद रखो! वे तुमको बिना मारे नहीं छोड़ेंगे। अरे नीच! अब मैंने जान लिया है कि तेरी मृत्यु निश्चित् है।

अब श्री राम सोने के हिरन का रूप बनाने वाले उस कपटी मारीच राक्षस को मार कर अपनी कुटी को आ रहे थे तब लक्ष्मण को आते देख कर मन में तरह-तरह के सन्देह करने लगे। लक्ष्मण हाथ जोड़ कर बोले—नाथ, मेरा कुछ अपराध नहीं। मैंने तो उनको बहुत समझाया कि यह आवाज़ किसी राक्षस की है, श्री राम की नहीं परन्तु उन्होंने मेरी एक न सुनी। जब वे मुझ को अपशब्द कहने लगी तब लाचार होकर मैं वहाँ से आपके पास आया हूँ। मैं तो जानता ही था—मुझे तो पूरा भरोसा था कि हमारे शूरवीर भाई को कोई भी राक्षस दुःख नहीं पहुँचा सकता।

अब दोनों भाई सीता की कुशल मनाते हुए उनकी प्रसन्नता से कुटी में देखने के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हुए शीघ्र गति से कुटी को चल दिये। जब वे कुटी में पहुँचे और सीता को अपने स्थान पर न देखा तब दोनों भाइयों के मन का सन्देह और भी पक्का हो गया।

इस प्रकार जब दोनों भाई सीता को ढूँढ़ते फिरते थे तब आगे चल कर देखा तो एक जीव पड़ा सिसक रहा है। तब उनके कहने लगा कि रावण ने सीता का हरण किया है। इतना कह कर जटायु ने श्री राम के दर्शन करके प्राण त्याग दिये। श्री राम सीता को खोजने शबरी के आश्रम की ओर चल दिये। वैसे तो शबरी जाति की भीलनी थी परन्तु वह प्रभु की भक्ति करती थी। जब उसने श्री राम को आते देखा तब झटपट दौड़ कर उनके चरणों में गिर कर उनकी बहुत कुछ सेवा की।

यह काण्ड ''रामचरितमानस'' का सर्वश्रेष्ठ काण्ड है क्योंकि इसमें श्री राम ने लक्ष्मण को दिया गया ज्ञानोपदेश और शबरी को भक्ति का उपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त इसमें श्री राम ने कुशलता एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया क्योंकि उन्होंने समूचे राष्ट्र को जोड़ने का महान् कार्य किया। इस काण्ड में रावण ने सीता हरण किया और श्री राम ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा स्थान-स्थान पर स्वयं जाकर राष्ट्र पर आई विपत्ति से लड़ने के लिये लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करके उन्हें तैयार किया। अतः इसी कारण ''रामचरितमानस'' में अरण्यकाण्ड का वही स्थान है जो महाभारत में गीता का और भागवत पुराण में 11वें स्कन्द का है।

38. **मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।।**
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।। 4.3

अर्थ–मितप्रद=थोड़ा ही, अमित=अतुल, बयदेही=सीता, सेव=सेवा।

जिस समय वन जाते हुए राम, सीता और लक्ष्मण अत्रि मुनि के आश्रम में आते हैं तो उस समय अत्रि मुनि उनका स्वागत करते हैं। इसके पश्चात् अत्रि मुनि जी की पत्नी अनुसूया के सीता जी उस के चरण

पकड़ कर मिली तो अनुसूया ने सीता जी को दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये । इसके उपरान्त अनुसूया सीता जी को उपदेश देती है । हे राजकुमारी ! सुनो ! माता-पिता भाई और सभी हितकारी हैं परन्तु ये सब एक सीमा तक ही सुखदायी हैं । इसके विपरीत हे सीता ! पति अतुल सुख दान करने वाला है । अतः जो स्त्री अपने पति की सेवा न करे वह नीच है । वस्तुतः चार पुरुषार्थों में से धर्म, काम और मोक्ष तो केवल पति से सिद्ध होते हैं रहा अर्थ यह अन्यत्र भी मिल सकता है । परन्तु एक सीमा तक ही माता-पिता, भाई आदि के धर्म से उसका कोई भाग नहीं, परन्तु पति की वो वह सहधर्मिणी है । पति के धर्म में उस का और उस के पति का भाग होता है । काम की सार्थकता ही पति के साथ है । पति के अतिरिक्त काम का सेवन तो नरक का द्वार है ।

39. **धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी । ।** —4.4

अर्थ—आपद=विपत्ति, परिखिअहिं=परीक्षा

जब वनगमन जाते समय राम, सीता और लक्ष्मण अत्रि मुनि के आश्रम पर पहुँचते हैं तो अत्रि मुनि की धर्मपत्नी अनुसूया माता सीता से कहती है कि माता, पिता और भाई सभी हितकारी होते हैं परन्तु ये संबंधी एक सीमा तक ही सुखकारी हैं परन्तु पति तो असीम सुखकारी होता है । वह स्त्री अधम है तो पति सेवा नहीं करती । परन्तु आगे वह सीता को उपदेश देती हुई कहती है कि धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की विपत्तिकाल में ही परीक्षा होती है ।

40. **गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई । ।** 14.2

अर्थ—गो=इन्द्रियाँ, गोचर=इन्द्रियों का विषय

श्री राम लक्ष्मण को उपदेश देते हुये कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! आप मन चित्त, बुद्धि लगा कर सुनिये । मैं और मेरा तू और तेरा यही माया हे

जिसने जीवों को वश में कर रखा है । इन्द्रियों और इन्द्रियों का विषय और जहाँ तक मन जाय हे भाई ! उस सब को माया जानना । वस्तुतः मैं और मेरा सब अनर्थों की जड़ है क्योकि इससे अहंभाव का स्फुरण होता है इसके होते ही जगत् दृश्य सपने की भाँति सामने खड़ा हो जाता है ।

41. **ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ।।**
कहिअ तात तो परम बिरागी । तत सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ।। 14.4

श्रीराम लक्ष्मण को उपदेश करते हुए कहते हैं कि एक अविद्या है जो बड़ी दुष्टा एवं अत्यंत दुःख रूपा है जिसके वश होकर जीव संसार कुएं में पड़ा हैं इसके विपरीत एक विद्या है जिसके वश में गुण हैं वह ही जगत् की रचना करती है । ज्ञान वह है जहाँ एक भी भान न हो । सब में ब्रह्म को समान रूप से देखें । हे तात् ! वह परम वैरागी कहा जायेगा जो सिद्धियों और तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) को तिनके के समान त्याग दो । बुद्धि में निर्विकार एकरस चेतन सत्ता की प्रतिष्ठा सर्वत्र उसे एक रस व्याप्त देखना और हृदय में अभिमान और मोह माया का सर्वथा त्याग ही सच्चा ज्ञान है ।

42. **हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ।।**
खंजन, सुक, कपोत, मृग मीन । मधुप निकट कोकिल प्रबीना ।। 29(ख)5

अर्थ–खग=पक्षी, मधुकर=भौंरे, खंजन=एक प्रकार का पक्षी, सुक=तोता, मीन=मछली

मारीच को मारने के पश्चात् जब श्री राम और लक्ष्मण गोदावरी का तट पर अपने आश्रम पर पहुँचे तो वहाँ जाकर देखा कि सीता जी आश्रम में नहीं थी । ऐसा देखकर श्री राम साधारण व्यक्ति की भाँति व्याकुल होकर लताओं एवं वृक्षों से सीता जी का पता पूछने लगे । हे पक्षियों ! हे मृगो ! हे भ्रमरों की पंक्ति ! क्या आपने कहीं सीताजी को देखा है जोकि मृगनयनी के समान सुन्दर थी । खंजन, तोता, कबूतर, मछली भौंरों का समूह सुन्दर स्वर में निपुण कोयल आदि से भी प्रश्न पूछ रहे हैं कि सीता जी कहाँ है । इससे प्रतीत होता कि श्री राम महापुरुष और

मर्यादा पुरुषोत्तम थे । परन्तु परमेश्वर नहीं जोकि सर्वज्ञ हैं ।

43. सापत ताडत परुष कहंता । बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ।
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना । सूद्र न गुन गत ग्यान प्रबीना ।। 33.1

अर्थ–सापत–शाप देता हुआ, ताडत=मारता हुआ, कहंता=कहने वाला, परुष=कठोर ।

श्री राम जब सीता जी की खोज करते हुए कबंध राक्षस का वध करने के पश्चात् वे उसे उपदेश देते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण चाहे शाप दे, चाहे मार डाल, चाहे गालियाँ दे वह फिर भी पूजनीय है । इसके विपरीत शूद्र चाहे गुणवन एवं ज्ञान हो पूजनीय नहीं है । देखिए! श्रीराम के ये विचार हैं जिन्हें अंधविश्वासी हिन्दू भक्तिभाव से पढ़ते हैं और पढ़े पढ़कर झूमते हैं । इन्हीं मानव विरोधी व अमानवीय विचारों का विष फैलाने के लिए ध्वनिवर्द्धक (Loud Speaker) लगाकर अखंड पाठ करवाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त धर्मनिरपेक्ष पड़ोसियों की रातों की नींद हराम की जाती है । भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है । अतः ऐसे विचार भारतीय विधान के विरुद्ध हैं ।

44. जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ।
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।। 34.3

अर्थ–बारिद=बादल

जब श्री राम लक्ष्मण शबरी के आश्रम में पहुँचे और शबरी ने उन्हें खाने के लिए कंद मूल और फल दिये और उन्होंने इसे बड़े प्रेम से खाया । फिर हाथजोड़ कर शबरी उनके समक्ष खड़ी होकर उनकी स्तुति करने लगी और स्वयं को अधम जाति की बताने लगी । इस पर श्री राम शबरी को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे शबरी ! मेरी बात सुनो ! मैं तो एक मात्र भक्ति का सम्बन्ध मानता हूँ । जति-पाँति, धर्म, बड़ाई, धन, कुटुम्ब, गुण, चतुरता, इनके होते हुए भी भक्तिरहित व्यक्ति कैसा लगता है । जैसे जलहीन बादल दिखाई पड़ता है । कहने का भाव यह है कि भक्ति के अभाव में ये सब गुण बेकार हैं । जैसे रविदास, सदन, नामदेव आदि अनेक भक्त हुये । इन में कौन से ज्ञानी थे । इनमें विद्या आदि कुछ भी नहीं थी इनकी जाति भी उच्च नहीं थी । परन्तु इनमें

अनन्त प्रभु की भावना थी । अतः वे सब मुझे प्रिय थे और उन्हें प्रभु की अनुभूति हुई ।

45. **नबधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।**

प्रथम भगति संतह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।। 34.4

इसके पश्चात् श्री राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं हे शबरी ! मैं तुझ से नवधा भक्ति कहता हूँ । कृपया आप उसे सावधान होकर सुनिये एवं मन में इसको धारण कीजिये । प्रथम भक्ति संत संगति है और दूसरी प्रकार की भक्ति है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम ।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ।। दोहा 35

तीसरी प्रकार की भक्ति है गुरुचरण कमलों की सेवा, अभिमानरहित होकर करना, चौथी प्रकार की भक्ति है कपटरहित होकर गुण समूहों का गान करना ।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।

छठ दम बिरति सील बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ।। 35.1

अर्थ–दमसील=मन समेत सारी इन्द्रियों का सदा वश में रखने वाला होना ।

पाँचवी भक्ति है मेरे मंत्र का जप और उसमें दृढ़ विश्वास जोकि वेदों में प्रसिद्ध है । छठीं भक्ति है इन्द्रियनिग्रह, अच्छा चरित्र, बहुत कार्य में वैराग्य और निरंतर सज्जनों के संग में तत्पर रहना ।

सातवँ सम मोहि जग देखा । मीते संत अधिक करि लेखा ।

आठवँ जथालाभ संतोष, सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा ।। 35.2

सातवीं भक्ति है सारे संसार को राममय देखें और संतों से अधिक समझें । आठवीं भक्ति है जो कुछ प्रभुप्रदत है उसमें संतोष रखें क्योंकि संतोष संसार का सबसे बड़ा सुख है और स्वप्न में भी पराये दोष न देखें ।

नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ।।

मन मुँह एकउ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर घर कोई ।। 35.3

नवीं भक्ति सरल स्वभाव सबसे छलरहित व्यवहार हृदय में मेरा भरोसा हर्ष और दीनतारहित होना। इन नौ में से एक भी भक्ति जिनके हृदय में होती है। स्त्री पुरुष चर-अचर सहित कोई भी हो। हे भामिनी! वह मुझे अत्यंत प्रिय है। परन्तु आप में तो सभी प्रकार की भक्तियाँ हैं। परन्तु शबरी स्वयं को भक्तियोग का अधिकारी नहीं मानती है। यहाँ तक कि उसे स्तुति करने में भी संकोच है। इस पर श्री राम उसे भक्ति के नौ लक्षण बतलाते हैं। जिससे वह उन की प्रेमपात्र बन जाती है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भक्तियोग का पर्यवसान (समाप्ति) भगवान् को प्रेमपात्र बनाने में है और शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया गया उसका पर्यवसन भगवान् का प्रेमपत्र है। अतः दोनों में पार्थक्य निष्कारण नहीं है।

46. **क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल गम कीं दाया।।**
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला।।
उमा कहँउ मैं अनुभव अपना। संत हरि भजनु जगत सब सपना।।

–38(ख) 2.3

अर्थ–मनोज=काम, दया=कृपा, इन्द्रजाल=मायाजाल, नट=नटराज प्रभु।

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि श्रीराम गुणातीत है चराचर जगत् के स्वामी और सेवक के हृदय को जानने वाले हैं। उन्होंने ही कामी लोगों की दीनता दिखलायी है और विवेकी पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है। इस प्रकार आगे उपदेश देते हुये शिव कहते हैं कि हे पार्वती! क्रोध, काम, लोभ, मद और माया– ये सभी विकार प्रभुकृपा से ही छूट जाते हैं। वह नटराज प्रभु जिस पर प्रसन्न होते हैं वह व्यक्ति मायाजाल में नहीं फंसता। हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव बतलाता हूँ कि प्रभुभजन ही सत्य है और यह सारा संसार तो स्वप्न की भाँति क्षणभंगुर है।

4. किष्किन्धाकाण्ड

अब श्री राम, लक्ष्मण दोनों भाई सीता को ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचे। उस पर्वत पर वानरों का राजा सुग्रीव अपने मंत्री हनुमान सहित रहते थे। जब सुग्रीव ने इन दोनों भाइयों को आते देखा तब वह मन में बहुत डरा और सोचने लगा कि कहीं इनको बालि ने तो मुझे मारने को भेजा हो। हनुमान ने श्रीराम से कहा–

महाराज आप सुग्रीव से मित्रता कर लीजिए तो वह सीता को ढूँढने के लिए बहुत से वानर इधर-उधर भेज देंगे। इस प्रकार बहुत ही शीघ्र सीता का पता लग जायेगा।

हनुमान दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास ले गये और दोनों की मित्रता करा दी। श्री राम ने यह प्रतिज्ञा कर ली–

मैं बालि को मार कर सुग्रीव को उसकी स्त्री और किष्किंधा का राज दिला दूँगा।

सुग्रीव ने भी प्रतिज्ञा कर ली–

मैं अपनी सेना को चारों ओर भेज कर सीता जी का समाचार मँगवा दूँगा।

सुग्रीव ने कहा एक दिन जब मैं व्यस्त था तो मैंने राम! राम! की पुकार सुनी जोकि आकाश में उड़ रहे पुष्पक रथ से आ रही थी। जब हम यह अद्‌भुत दृश्य देख रहे थे तभी सीता ने ऊपर से एक कपड़े की गठरी हमारे पास फेंकी। यह रत्न आभूषणों की गठरी थी इसलिए हमने इसे सुरक्षित रख लिया। राम ने आभूषणों की गठरी मंगाई।

जब दोनों भाई आभूषण देखकर दुःखी हुए तो सुग्रीव और हनुमान अति चिन्तामग्न हो उन्हें देखने लगे। सुग्रीव और अधिक सहन न कर सके और बोले–

स्वामी! दुःखी मत हो। आज से ही मैं सीता को खोजने का प्रयत्न करूँगा और उस दुष्ट रावण का नाश कर सीता को वापिस ला आप दोनों को प्रसन्न करूँगा। यह मेरा वचन और पुण्य प्रतिज्ञा है।

अब श्री राम के कहने से सुग्रीव बालि से लड़ने के लिए किष्किंधापुरी को गया और बालि के दरवाजे पर जाकर बड़े जोर-जोर से गर्जने लगा।

बालि ने वहाँ केवल सुग्रीव को ही देखा। अतः वह उस पर कूद पड़ा और दोनों में घूंसों के परस्पर प्रहार से युद्ध आरम्भ कर दिया। सुग्रीव प्रचंड प्रहारों की बौछारों को सहन न कर सका। उसने भाग जाना चाहा। बालि ने उसे मार पीट कर इतनी कष्टदायक पीड़ा पहुँचाई कि सुग्रीव भाग गया। श्री राम ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, सुग्रीव! दुःखी मत हो, इस का कारण सुनो। तुम दोनों परस्पर समान रूप आकृति और कार्यों में इतने समान हो कि मैं उस पर ठीक निशाना नहीं लगा सका।

श्री राम ने कुछ जंगली फूलों की माला बनाकर सुग्रीव के गले में पहिना दी। इस प्रकार प्रोत्साहित कर सुग्रीव को राम व लक्ष्मण ने बालि के दुर्ग पर पुनः आह्वान करने को कहा। श्री राम ने प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर सीधा बालि के गर्वित हृदय में मारा। बालि को मूर्छा आ गई और निस्सहाय हो वह भूमि पर गिर पड़ा।

इस प्रकार बालि को मार कर श्री राम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। सुग्रीव को किष्किंधा का राजा और बालि के पुत्र अंगद को वहाँ का युवराज बना दिया। अब सुग्रीव अपनी स्त्री रूमा और राज्य को पाकर सुख से रहने लगा। इसके पश्चात् श्री राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण सुग्रीव को बुलाने के लिए किष्किंधापुरी को चल दिये। उधर हनुमान को यह चिन्ता हुई कि राजा सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये। सुग्रीव ने हाथ जोड़ कर श्री राम से अपनी भूल की क्षमा माँगी। श्री राम बड़े शांत स्वभाव थे।

अब सुग्रीव ने बहुत जल्द वानरों को बुला कर उनसे कह दिया। अपने स्वामी की आज्ञा पाते ही सब वानर सीता की खोज करने के लिए जहाँ तहाँ चले गये। अब सुग्रीव ने अंगद, हनुमान, नल, नील, जाम्बवान् आदि महाबुद्धिमान और महाबलवान् वानरों को बुलाया और उनको दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा दी। जब वे चलने को हुए तब श्री राम ने उन सब में बुद्धिमान हनुमान को अपने हाथ की एक अंगूठी देकर कहा कि जब तुम्हें कहीं सीता

मिले तब इस अँगूठी को हमारी पहचान के लिए उनको दे देना। हनुमान अँगूठी लेकर और मन में प्रसन्न होकर अंगद आदि के साथ दक्षिण दिशा को चल दिये। सम्पाति ने कहा–

इसी समुद्र के परले किनारे पर लंका नाम की एक राक्षसों की बस्ती है। वहाँ का राजा बड़ा बली है। वही सीता को चुराकर ले गया है।

जाम्बवान् ने हनुमान को उनका बल याद दिलाया तो हनुमान भी अपने बल को याद करके जोश में भर गये। इन्होंने उस समय अपना शरीर इतना बढ़ाया कि देखने में मालूम होते थे जैसे कोई पर्वत हो।

47. **जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।**

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।। 6.1

अर्थ–तिन्हहि=उन्हें, विलोकत=देखने से, पातक=पाप, गिरि=पर्वत, रज=धूल, मेरु=बड़ा भारी पर्वत।

सुग्रीव श्री राम से कहते हैं कि बालि ने मुझे शत्रु की भाँति मारा। मेरा सर्वस्व और स्त्री को भी हरण कर लिया। इस प्रकार श्री राम की दोनों विशाल भुजायें अपने सेवक सुग्रीव का दुःख सुनकर फड़क उठी। श्री राम ने सुग्रीव को कहा कि मैं बालि को एक ही बाण से मार डालूंगा। आगे श्री राम सुग्रीव को समझाते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते उन्हें देखने से भी भारी पाप लगता है। पर्वत के समान अपने भारी दुःख को धूल के समान जाने और मित्र का दुःख रज के समान भी हो तो उसे बड़े भारी पर्वत के समान जानो। जैसे श्री राम का राज्य छूटा, वनवास हुआ, सीता हरण हुआ। यह दुःख पर्वत के समान हैं तो इसको उन्होंने रज समान माना और इसके विपरीत सुग्रीव के दुःख को सुमेरु सम जानकर उसे शीघ्र दूर किया।

जिन्ह केअसि मति सहज न आई। ते सठ कत हदि करत मिताई।
कुपथ निवारि सुपथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुन्हि दुरावा। 6.2

अर्थ–असि=ऐसी, मति=बुद्धि, सहज=प्राप्त, मिताई=मित्रता, निवारि=रोककर, दुवारा=छिपाते।

जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि नहीं मिलती है वे मूर्ख व्यक्ति हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं ? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को कुमार्ग से रोककर सुमार्ग पर चलाये । उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावें तभी वह सच्चा मित्र कहलाने का अधिकारी है अन्यथा नहीं । वस्तुतः जब कुपथ का निवारण होता है तब व्यक्ति सुपथ पर चलता है । भाव यह है कि इस प्रकार मित्र का परलोक सुधारे । यह कहकर आगे बताते हैं मित्र के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ।

देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ।

बिपति काल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ।। 6.3

अर्थ–सक=शंका, धरई=रखे, बल=पुरुषार्थ, करई=करे, सतगुन नेहा=सौ गुणा प्रेम, श्रुति=वेद ।

देने लेने में मन में शंका न रखें, अपने पुरुषार्थ से सदा हित करें । विपत्ति के समय सौगुना प्रेम करे । वेद और संत कहते हैं कि अच्छे मित्र के यही लक्षण हैं । वस्तुतः यदि बल से अधिक सहायता करे तो उसका कहना ही क्या ! उसकी परलोक में भी प्रशंसा होगी । परन्तु अपना जितना बल हे उसको लगाने में कोरकसर न रखें क्योंकि बल भर हित करने में कसर रखने से मित्र पद से गिर जायेगा ।

आगें कह मृदु वचन बनाई । पाछें अनहित मन कुटिलाई ।

जाकर चित अहि गति सम भाई । अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ।। 6.4

अर्थ–मृदु =कोमल, अनहित=बुराई, कुटिलाई=कपट, अहि=सर्प, परिहरेहि=त्यागना ।

जो सामने मुख पर तो कोमल मीठे वचन बनाकर कहे । परन्तु पीछे बुराई करे और मन में कपट रखे । हे भाई ! जिस व्यक्ति का मन सर्प की चाल के समान टेढ़ा है ऐसे कुमित्र को तो त्याग में ही भलाई है । जैसे सर्प की गति नैसर्गिक होने से उसका पलटना असम्भव है वैसे ही कपटी मित्र की कुटिलता दूसरे के प्रयत्न से पलट नहीं सकती है । अतः ऐसे मित्र के त्याग ही में ही भलाई है ।

48. **सेवक सेठ नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूल सम चारी । ।** –6.5

अर्थ–सठ=दुष्ट नौकर, कृपन=कंजूस राजा ।

श्री राम सुग्रीव से कहते है कि जो व्यक्ति सामने तो बना बनाकर कोमल वचन बोलता है । पीठ पीछे बुराई करता है, हे सुग्रीव ! जिस व्यक्ति का मन साँप की चाल के समान टेड़ा है ऐसे कुमित्र का परित्याग ही हितकर है क्योंकि दुष्ट नौकर, कंजूस राजा, बुरी स्त्री और कपटी मित्र ये चारों शूल के समान दुःख देते हैं । अतः इन सब का त्याग करना ही जीवन के लिये कल्याणकारी है ।

49. **उपजा ग्यान बचन तब बोला । नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला । ।**

सुख संपत्ति परिवार बड़ाई । संत परिहरि करिहउँ सेवकाई । । 6.8

अर्थ–अबोल=स्थिर, परिहरि=छोड़कर, सेवकाई=सेवा करना ।

जब सुग्रीव ने देखा कि दुन्दुभी की अस्थि को श्रीराम ने बायें पद के अंगुष्ठ से 10 योजन पर फेंक दिया और भूतल को बेध दिया । यह देखकर सुग्रीव श्री राम जी की शरण में चले गये । जब सुग्रीव को ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वह वचन बोले–हे प्रभो ! आप की कृपा से मेरा मन स्थिर हो गया । अतः अब मैं सुख, सम्पत्ति, परिवार एवं सम्मान सब का परित्याग करके आप की सेवा करूँगा । कहने का भाव यह है कि सुग्रीव ने श्री राम के प्रति समर्पण कर दिया ।

50. **धर्मा हेतु अवतरेहु गोसाईं । मारेहु माहि ब्याध की नाईं ।**

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा । अवगुन कवन नाथ मोहि मारा । ।

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई । । 8.3.4

अर्थ –हेतु=के लिये, अवतरेहु=अवतार धारण करना, माहि=मुझे, नाई=भाँति, कवन=किस, अनुजबधू=छोटे भाई की पत्नी, सुतनारी= पुत्र की पत्नी, बिलाकई=देखे, ताहि=उसे, बधे=मारा ।

जिस समय बालि एवं सुग्रीव में युद्ध हुआ । दोनों भाइ का रूप एक जैसे होने के कारण श्री राम बालि को नहीं मार सके फिर पहचानने के

लिए श्री राम ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी। वृक्ष की आड़ में छिप कर बालि पर बाण चला दिया जब दोनों भाई फिर से युद्ध कर रहे थे। बालि पृथ्वी पर गिर पड़ा और श्री राम की ओर देखकर वह बोला।

हे गोसाई! आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार धारण किया परन्तु मुझे व्याध की भाँति छिपकर क्यों मारा है। इस प्रकार मैं आप का शत्रु सिद्ध हूँ और इसके विपरीत सुग्रीव प्यारा। हे नाथ! आप ने मुझे किस दोष के कारण मारा?

इसका उत्तर देते हुए श्री राम ने बालि को उपदेश दिया—हे दुष्ट! सुन छोटे भाई की पत्नी, बहन और पुत्रवधू ये चारों कन्या के समान हैं गिनाई गई तीन और बताई गई चार। इन्हीं चार को कुदृष्टि से देखने की बात क्यों गई? क्या इनके अतिरिक्त माता, चाची, मौसी, मामी एवं नाते रिश्ते से बाहर की नारियों को कुदृष्टि से देखना कम बुरा है? भारतीय संस्कृति के अनुसार तो परस्त्री माता के समान और पराया धन मिट्टी के समान है फिर यह भेदभाव क्यों किया गया है? यहाँ तक कि चाणक्य ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक ''चाणक्यनीति'' में लिखा है—

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति।।

जो दूसरी स्त्री को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान जानता है वही तत्त्वदर्शी है।

परन्तु तुलसीदास के समक्ष तो अध्यात्मरामायण को अधोलिखित श्लोक का रूपान्तर करने का प्रश्न था फिर औचित्य पर विचार कौन करता?

दुहिता भगिनी भ्रतुर्भार्या चैतं तथा स्नुषा।

समायो रते तामामे कामपि विमूढ धीः।

पातकी सतु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा।। सर्ग 2 (60,61)

हे बालि! पुत्री, बहन, छोटे भाई की स्त्री और पुत्रवधू —ये चारों समान

हैं। जो मनुष्य इनमें से किसी एक के साथ भी रमण करता है उसे महापापी जानना चाहिये, राजा को उचित है कि उसे अवश्य मार डाले। अरे वनचर! तू बलात्कार से अपने छोटे भाई की स्त्री के साथ रमण करता था, इसलिये मुझ धर्मज्ञ ने तुझे मारा है। वस्तुतः स्त्रीहरण करने वाले आततायी का अन्त परमार्थ दृष्टि से उसका वध उचित था।

51. **सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लाभि करहिं सब प्रीती।।** 11.1

शिव पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि संसार में श्री राम के समान हितकारी गुरु माता-पिता, भाई और स्वामी कोई भी नहीं है। परन्तु संसार में तो देवता, नर और मुनि सब की यह रीति है कि वे अपने स्वार्थ के लिये ही सबसे प्रेम करते हैं। परन्तु श्री राम ने सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाया और अंगद को युवराज। इसका मुख्य कारण यह है कि श्रीराम सुग्रीव एवं अंगद से सीताहरण की खोज में सहायता चाहते थे और उन्होंने ऐसा किया भी था।

52. **दामिनि दमक रह घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।।**
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के वचन संत सह जैसें।।
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराईं। जस थोरेहुँ धन खल इतराई।। −13.1-3

अर्थ−दामिनि = बिजली, दमक = चमकना, घन = बादल, खल = दुष्ट, जथा = जैसे, थिर = स्थिर, जलद = बादल, निअराएँ = समीप आकर, नवहि= झुकना, बुध=विद्वान्, अघात=चोट, गिरि=पर्वत, तोराईं=किनारों को तोड़ना, इतराई=घमंड करना।

यह उस समय का प्रसंग है जब श्री राम एवं लक्ष्मण प्रवर्षण पर्वत पर जाकर टिकते हैं। वर्षा ऋतु का श्रीगणेश हो जाता है और आकाश में बादल घुमड़-घुमड़ कर घोर गर्जना कर रहे होते हैं। राम का हृदय सीता के बिना अत्यंत व्याकुल हो जाता है। तो उस समय श्री राम लक्ष्मण को कहते हैं कि बादलों में बिजली इस प्रकार चमक रही है जैसे

दुष्ट व्यक्ति की प्रीति स्थिर नहीं रहती । राजनीति का कैसा सुन्दर सूत्र है यह ! पृथ्वी के समीप आकर बादल ऐसे बरस रहे हैं जैसे विद्या पाकर विद्वान् लोग झुक जाते हैं । बूँदों की चोट को पर्वत इस प्रकार सहते हैं जैसे दुष्टों के वचनों को सज्जन सहते हैं । छोटी नदियाँ भरकर किनारों को तोड़ती हुई इस प्रकार चलती है जैसे थोड़े ही धन को पाकर दुष्ट व्यक्ति घमंड करने लगते हैं और मर्यादा का त्याग करते हैं ।

53. **हम सब सेवक अति बड़भागी । संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ।** 25.7

अर्थ–बडभागी=अत्यन्त भाग्यशाली, अनुरागी=प्रेमी

जब सीता माता की खोज करते करते लवण सागर के तट पर जाकर सब वानर कुश बिछाकर बैठ गये । इसके उपरांत जाम्बवान् ने अंगद का दुःख देखकर उपदेश देते हुए कहा कि हे अंगद ! श्री राम का साधारण मनुष्य न मानो वस्तुतः वे निर्गुण ब्रह्म अजेय और अजन्मा है । अतः हम सब अत्यंत भाग्यशाली हैं जो हम निरन्तर श्री राम के प्रेमी हैं । हम देखते हैं कि यहाँ पर वानरों का श्री राम के प्रति प्रेम दर्शाया गया । वस्तुतः श्री राम महामानव थे न कि परमात्मा ।

5. सुन्दरकाण्ड

जामवन्त जी के वचन सुनकर हनुमान जी ने कहा कि मैं एक मास में सीता जी का समाचार लेकर वापस आ जाऊँगा। इसके बाद हनुमान जी सागर तट के एक सुन्दर पर्वत पर चढ़कर उछलते हुए लंका की ओर चले। मार्ग में उन्हे सुरसा ने रोककर कहा कि मैं तुम्हें खा जाऊँगी। हनुमान जी छोटा-सा रूप बनाकर उसके विशाल मुख मे घुसकर बाहर निकल आये। इसके आगे हनुमान जी को छायाग्राहिणी राक्षसी ने रोका। उसे मारकर हनुमान जी सागर के उस पार चले गये। लंका के पास पहुँचकर हनुमान जी ने रात के समय मच्छर के समान छोटा रूप बना लिया। वहाँ लंकिनी नाम की राक्षसी द्वार की रक्षा कर रही थी। उसे मारकर हनुमान जी ने लंका में प्रवेश किया।

विभीषण से सीता का पता पूछकर हनुमान जी रावण की अशोक वाटिका में आ गये। उसी समय वहाँ रावण भी आ गया। उसने सीता जी से अपनी पत्नी बनने का आग्रह किया। हे सयानी सुमुखी सीता! तू मेरी बात सुन। मेरी मन्दोदरी आदि जो रानियाँ हैं, मैं उन्हें तेरी दासी बनाने की प्रतिज्ञा करता हूँ। तू केवल एकबार मेरी ओर देख ले। रावण की यह बात सुनकर सीता जी ने अपने और रावण के बीच में तिनका रख लिया। सीता ने अपने अत्यधिक प्रिय राम का स्मरण किया और रावण से कहा—हे रावण सुन! जुगनू के प्रकाश से कभी भी कमलिनी नहीं खिलती। हे दुष्ट! क्या तुझे रघुवीर राम के बाण की याद नहीं है। हे दुष्ट! तू मेरा हरण करके ले आया था। तू नीच और निर्लज्ज है। तुझे बिल्कुल लज्जा नहीं है।

रावण ने जब यह सुना कि सीता मुझे जुगनू के समान और श्री राम को सूर्य के समान बता रही है तो वह बुरी तरह से खिसिया गया और तलवार निकाल कर बोला—

हे सीता! तूने मेरा अपमान किया हैं मैं भयानक तलवार से तेरा सिर काट दूँगा। नहीं तो शीघ्र मेरी बात मान ले। हे सुन्दर मुख वाली सीता! अगर

तूने मेरी बात नहीं मानी तो तेरे जीवन की हानि हो जायेगी। तेरा जीवन समाप्त हो जायेगा। रावण की यह बात सुनकर सीता बोली–"राम की जो भुजा नीले कमलों की माला के समान सुन्दर है। मेरी गर्दन पर या तो वह भुजा होगी अथवा तेरी भयानक तलवार होगी। हे रावण! मेरा इस प्रकार का प्रण तू प्रमाण के रूप में सुन ले।"

रावण चला गया तो राक्षसियाँ सीता जी को तरह-तरह से डराने लगीं। उनमें एक राक्षसी त्रिजटा नाम की थी। उसने सभी राक्षसियों को बुलाया और अपना सपना बताया। त्रिजटा के मन में राम भक्ति थी और वह निपुण विवेक वाली थी। त्रिजटा ने सीता के चरण पकड़ लिये और उसने सीता को श्री राम जी का प्रताप और उनका यश समझाया। त्रिजटा बोली–हे राजकुमारी! तू श्री राम की आग में मत जल। ऐसा कह कर वह त्रिजटा अपने घर चली गई।

हनुमानजी ने सीता जी को श्री राम जी के वियोग में अधिक व्याकुल देखा तो श्री राम जी की अंगूठी पहचान के रूप में देकर उनसे श्री राम जी का सन्देश कहा। सीता जी की आज्ञा लेकर हनुमान जी ने पुष्प-वाटिका उजाड़ दी। वहाँ के पहरेदारों ने रावण को यह समाचार दिया तो उसने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा। हनुमान ने उसे मार डाला तो रावण ने क्रोधित होकर मेघनाद को भेजा। मेघनाद ने हनुमानजी को ब्रह्मबाण से मूर्छित करके नागपाश में बाँध लिया और रावण के दरबार में तो ले गया।

दरबार में पहुँचकर रावण हनुमान के मध्य संवाद हुआ। हनुमान जी ने रावण को अनेक प्रकार से समझाया और श्री राम के बल का वर्णन किया। सीता जी को वापस भेजने की बात हनुमान जी ने यद्यपि बहुत हितकारी कही थी, परन्तु रावण को यह बात बहुत बुरी लगी। उस ने अपने सैनिकों से कहा कि इसकी पूँछ में आग लगा दो। रावण के सेवक हनुमान जी की पूँछ में रुई, कपड़ा आदि बाँधकर घी-तेल डालने लगे। हनुमान जी भी अपनी पूँछ बढ़ाने लगे। हनुमान जी की पूँछ में जब आग लगा दी गई तो उन्होंने घूम-घूमकर सारी लंका जला दी, केवल विभीष्ण का घर छोड़ दिया।

इसके पश्चात् सागर में अपनी पूँछ बुझाकर हनुमान जी सीता जी के पास गये और वापस जाने की आज्ञा माँगी। सीता जी से प्रमाण के रूप में चूड़ामणि लेकर हनुमान जी सागर के इस पार आये। उन्हें देखकर सभी वानर भालू बहुत प्रसन्न हुए। किष्किंधा में लौटकर उन वानरों और रीछों ने सुग्रीव की राज्य वाटिका उजाड़ दी। इस का समाचार पाकर सुग्रीव ने समझ लिया कि इन्हें सीता का पता मिल गया है।

जामवन्त जी ने श्री राम को बताया कि हनुमान जी ने सीता जी की खोज कर ली है। इसे सुनकर श्री राम ने प्रसन्न होकर हनुमान जी को सीने से लगा लिया। श्री राम जी हनुमान जी से वर माँगने को कहा तो उन्होंने श्री राम जी की भक्ति माँगी। इसके बाद श्री राम जी ने सुग्रीव को बुलाकर लंका की ओर चलने का आदेश देने को कहा। सुग्रीव की आज्ञा पाकर वानर और रीछ श्री राम के चरणों में शीष नवाकर लंका की ओर चलने लगे। उसी समय सीता को लंका में शुभ शगुन हुए।

जब से हनुमान जी लंका जला गये थे, तभी से लंका के निशाचर सशंकित रहते थे। रावण की पत्नी मन्दोदरी ने रावण से प्रार्थना की कि वह सीता को लौटा दे परन्तु रावण ने इस पर ध्यान नहीं दिया, विभीषण ने भी उचित अवसर देखकर यही प्रार्थना की–

हे कृपालु! अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं, यदि आप अपना सुन्दर यश, अच्छी बुद्धि, शुभ गति और अनेक प्रकार के सुख चाहते हैं तो स्वामी! दूसरे की पत्नी के ललाट को उसी प्रकार त्याग दो, जिस प्रकार लोग भादों के महीने में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा का त्याग कर देते हैं। कोई चौदहों भुवनों का अकेला स्वामी हो, परन्तु अगर वह प्राणियों से बैर करेगा तो स्थित नहीं रह सकता, उसका विनाश निश्चित है। जो भी मनुष्य गुण के सागर और चतुर हैं, उनके थोड़े से लोभ को भी कोई भला नहीं कहा जा सकता। हे स्वामी! काम, क्रोध, मद और लोभ–यह सभी नरक के मार्ग हैं।

सन्तजन इन सभी का त्याग करके जिन कोसल के स्वामी श्री राम का भजन करते हैं, आप भी उन्हीं का भजन करें। हे प्रिय बन्धु! राम मनुष्यों के

राजा नहीं है। वे संसार भर के स्वामी तथा काल के भी काल हैं। राम ब्रह्म, विकाररहित, जन्म न लेने वाले भगवान् हैं। वे व्यापक, न हारने वाले तथा आदि और अन्तहीन हैं। राम, गाय, ब्राह्मण और सन्तों के हितकारी हैं। उन्होंने मनुष्य का शरीर धारण किया है, परन्तु वे दया के सागर हैं। वे भक्तों का मनोरंजन करने वाले और दुष्टों के समूह का विनाश करने वाले हैं।

हे भाई सुनो! श्री राम वेद और धर्म के रक्षक हैं। आप ऐसे श्री राम से कभी वैर न करेकं और जाकर उनके सामने मस्तक झुकायें। रघुनाथ शरण में आने वाले का कष्ट दूर करने वाले हैं। हे स्वामी! आप श्री राम को सीता जी वापस दे दीजिए तथा सहज रूप से प्रेम करने वाले श्री राम जी का भजन कीजिए। जो शरण में आने वाला संसार से बैर करने वाला होता है, श्री राम उसका भी त्याग नहीं करते हैं। जिसका नाम दैहिक, दैविक और भौतिक–तीनों प्रकार के तापों का विनाश करने वाला है। हे रावण! मन में समझ लो कि वे ही श्री राम के रूप में प्रकट हुए हैं। मैं बार-बार आपके चरणों का स्पर्श कर रहा हूँ और दशानन। आप से विनय कर रहा हूँ कि तुम मान, मोह और मद त्यागकर कोसल राज्य के स्वामी राम का भजन करो। हमारे बाबा पुलस्त्य मुनि जी न यह बात अपने शिष्य के द्वारा मुझसे कहलवायी हैं। वही बात मैंने आप से कह दी। अच्छा अवसर पाकर मैंने आप से यह बात कही है।

माल्यवन्त रावण का चतुर मन्त्री था। उसे विभीषण की बात बहुत अच्छी लगी। उसने रावण से कहा कि तुम्हारा भाई विभीषण नीति का ज्ञाता है। वह जो कहता हे, उसे आप स्वीकार कर लें। रावण बोला कि तुम दोनों मेरे शत्रु के उत्कर्ष की बात कहते हो, तुम दोनों को कोई यहाँ से दूर कर दे। माल्यवन्त के चले जाने पर विभीषण ने रावण से पुनः विनती की। इस पर रावण ने क्रोधित होकर विभीषण को भरे दरबार में लात मारी और अपने दरबार से निकाल दिया। विभीषण प्रसन्न होकर श्री राम जी के पास चल दिये। विभीषण को सागर के इस पार आने पर वहाँ उपस्थित वानरों द्वारा रावण का गुप्तचर समझकर पकड़ लिया गया। विभीषण को श्री राम जी के

पास ले जाया गया । श्री राम जी को जब पता चला कि विभीषण उनकी शरण में आया है तो उन्होंने उसे अभयदान दिया, मित्र बनाया और लंका के राजा के रूप में उसका राज्यतिलक कर दिया ।

श्री राम जी ने विभीषण से सागर के उस पार जाने का उपाय पूछा । विभीषण ने सागर से विनय करने को कहा । विभीषण की बात मानकर श्री राम जी तीन दिन तक सागर से विनय करते रहे, किन्तु जब सागर ने विनय नहीं सुनी तो श्री राम एक भयानक अग्निबाण तानकर सागर को सुखाने को तैयार हो गये । यह देखकर सागर भयभीत होकर उपस्थित हुआ और उसने नल-नील द्वारा सेतु बनाने का उपाय बता दिया । वानर और रीछ पत्थर उठा उठाकर लाये । नल और नील के हाथ के स्पर्श से वे जल में तैरने लगे । सेतु बन जाने पर श्री राम सेना सहित सागर पार करके लंका के समीप पहुँच गये और सेना सहित छावनी बनाकर रहने लगे ।

54. तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ।। दोहा 4

अर्थ–तात=प्रिय, अपबर्ग=मोक्ष, ताहि=उससे, सकल मिलि=सब मिलकर, लव=थोड़े से ।

हनुमान जी जब लंका में प्रवेश करने लगे तो उन्हें लंकिनी नाम की राक्षसी ने रोका । हनुमान जी ने एक मुष्टिका मारी । उस ने मृत्यु के बाद दिव्य शरीर प्राप्त करके हनुमान जी को सत्संग की महिमा बताते हुए कहा–हे प्रिय ! स्वर्ग और मोक्ष का सुख तराजू में एक पलड़े पर रखा जाये तो वह उस सुख की समानता नहीं कर सकता जो एक क्षण के सत्संग में है । यह हमारे अनुभवी ऋषियों का अनुभूत सिद्धान्त है । एक हिन्दी कवि न लिखा है–

सुत, दारा और लक्ष्मी पापी के घर होय ।
संत समागम, हरिकथा जग में दुर्लभ दोय ।।

55. अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता । बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता ।। 6.2

अर्थ–भा=हो गया है, मोहि=मुझको, भरोस=भरोसा ।

विभीषण ने हनुमान से कहा हमारे रहने की दशा सुनो। यहाँ लंका में राक्षसों के बीच मैं ऐसे रहता हूँ, जिस प्रकार बेचारी जीभ दांतों के बीच रहती है। हे प्रिय! क्या कभी मुझे अनाथ जानकर सूर्यवंश के स्वामी श्री राम मुझ पर कृपा करेंगे। मेरा शरीर तमोगुणी है। मुझ पर धर्म का कोई साधन भी नहीं है। श्री राम के चरण कमलों में मेरा प्रेम भी नहीं है। हे हनुमान जी! अब मुझे अपने ऊपर श्री रामकृपा का भरोसा हो गया। क्योंकि प्रभुकृपा के बिना संतों का मिलन नहीं होता। आप जैसे रामभक्त के दर्शन हो गये हैं यह सब प्रभुकृपा ही है और सारे सारे कष्ट दूर हो जायेंगे।

56. **ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।**
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकड़ खलु तूल।। दोहा 33

अर्थ–कहुँ=को, अगम=अप्राप्य, प्राप्त न करने योग्य, बड़वानलहि= बड़वाग्नि के, खलु = निश्चय ही, तूल = रुई।

हनुमान जी रामकृपा के प्रभाव का वर्णन कर रहे हैं जिस पर तुम अनुकूल होते हो, उसके लिए कुछ भी प्राप्त करना कठिन नहीं है। कोई स्थान उसके लिए अगम्य नहीं है। आप के प्रभाव से रुई भी बाडवाग्नि को जला सकती है। यह निश्चित है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

57. **उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।।**
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा।। 33.2

अर्थ – जेहि=जिसने, भाव न=अच्छा नहीं लगता, आना=अन्य, दूसरा, जासू=जिसके, पावा=प्राप्त करता है।

सीता जी की खोज करने के हनुमान जी के कार्य से प्रसन्न होकर राम जी ने पूछा था कि मैं इसके बदले में तुम्हारा क्या उपकार करूँ? इसे सुनकर हनुमान जी कहते हैं स्वामी! आप कृपा करके मुझे अपनी भक्ति दीजिए जो सुख देने वाली और कभी समाप्त न होने वाली है। रामचन्द्र जी ने हनुमान जी की यह अत्यधिक सरल बात सुनकर कहा–ऐसा ही हो। यह कथा पार्वती जी को शंकर जी सुना रहे हैं। वे

कहते हैं—हे पार्वती ! जिसने भी श्री राम का स्वभाव जान लिया है, उसे भजन छोड़कर अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता । यह संवाद अर्थात् श्री राम जी और हनुमान ही की बातचीत जिसके हृदय में आती है, वही श्री राम के चरणों की भक्ति पा लेता है ।

58. **काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।**
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि सन्त । । दोहा 38

अर्थ – मद = अहंकार, घमण्ड, पंथ = मार्ग, परिहरि = त्यागकर, जेहि=जिनको ।

इसमें विभीषण द्वारा रावण को परामर्श देने का वर्णन है हे स्वामी ! काम, क्रोध, मद और लोभ—ये सब नरक में पहुँचाने वाले मार्ग हैं । आप इन सब को छोड़कर उन रघुवीर राम का भजन करो, जिनका भजन संत करते हैं । क्योंकि गीता में काम, क्रोध, लोभ को नरक का द्वारा कहा गया है जब कि मानस में नरक का पंथ ।

59. **सुमति कुमति सब कें उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं । ।**
जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना । जहाँ कुमति तहँ विपत्ति निदाना । । 39(ख).2

अर्थ– सुमति=अच्छी बुद्धि, कुमति=बुरी बुद्धि, उन=मन में, नाथ=हे स्वामी, निगम=वेद, अस=ऐसा, कहहीं=कहते हैं,नाना=अनेक प्रकार की, बिपति=आपत्ति । निदाना=अन्त में ।

माल्यवन्त मन्त्री और विभीषण द्वारा रावण को नीति समझाने का वर्णन है । माल्यवन्त रावण के अत्यधिक चतुर मंत्री थे । माल्यवन्त ने विभीषण के वचन सुनकर बहुत सुख अनुभव किया । माल्यवन्त ने रावण से कहा—हे प्रिय ! तुम्हारा छोटा भाई विभीषण नीति का आभूषण हैं तात्पर्य यह है कि विभीषण अत्यधिक नीति जानने वाला है । विभीषण जो कहता है, उसे अपने मन में धारण करो । उसे समझो । यह सुनकर रावण ने कहा—ये दोनों मूर्ख मेरे शत्रु राम की श्रेष्ठता का वर्णन कर रहे हैं । यहाँ कोई ऐसा है जो इन्हें यहाँ से दूर कर दे । यह सुनकर मन्त्री माल्यवन्त फिर अपने घर चले गये । विभीषण ने हाथ जोड़कर पुनः कहा—

अच्छी बुद्धि और बुरी बुद्धि सब के मन में रहती है। हे स्वामी! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि पुराणों और वेदों में ऐसी बातें लिखी हैं। जहाँ पर अच्छी बुद्धि होती है, वहाँ पर तरह-तरह की सम्पत्तियाँ रहती हैं। जहाँ पर बुरी बुद्धि होती है, वहाँ पर अन्त में विपत्ति आती है।

60. **सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।**
ते नर पाँवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि।। दोहा 43

अर्थ–सरनागत=शरण में आया हुआ, कहुँ=को, अनहित=हानि, पाँवर=नीच, तिनहि=उनको।

श्री राम शरणागत को त्यागने वाले के विषय में सुग्रीव को बता रहे हैं। जो लोग शरण में आये हुए मनुष्य को त्याग देते हैं। ऐसा वे अपने अहित का अनुभव करके करते हैं। वे मनुष्य नीच हैं और पाप से भरे हुए हैं। उन को देखने से भी हानि होती है। भाव यह है कि विभीषण का त्याग करने से हम लोक में निन्दित हो जायेंगे कि कोई भी हमारा मुख देखना न चाहेगा। जो शरणागत का त्याग कर देता है मैं उस का मुख नहीं देखता। भला मैं शरणागत का त्याग कैसे कर सकता हूँ।

61. **निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।** –43.3

अर्थ–पावा=पाता है, भावा=अच्छा लगता है।

विभीषण जब अपने बड़े भाई रावण को छोड़कर श्री राम की शरण में आना चाहता है। सुग्रीव, हनुमान आदि को उस पर शक होता है। जब सुग्रीव उसके आगमन की सूचना श्री राम को देता है तो श्री राम उसे अपनी शरण में आने की आज्ञा देते हैं। उस समय श्री राम, सुग्रीव के समझाते हुए कहते हैं कि यदि विभीषण के हृदय में पाप होगा तो वह उन के सामने नहीं आयेगा। यदि वह पापों का परित्याग करके प्रायश्चित करना चाहता है तो उसे अवश्य अवसर प्रदान करना चाहिये। अतः उसे मेरी शरण में ले आइये–

उस समय श्री राम सुग्रीव का उपदेश देते हुये कहते हैं कि सुग्रीव ने विभीषण को कपटी कहा था। परन्तु श्री राम इसका खण्डन करते हुए

कहते हैं कि मैं दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता क्योंकि मुझे छल, छिद्र एवं कपट अच्छा नहीं लगता। अतः जो मनुष्य शुद्ध मन वाला होता है जिसके भाव एवं विचार निर्मल होते हैं। वही मेरी कृपा प्राप्त कर मेरे दर्शनों को आता है। इसका दूसरा भाव यह भी है कि यदि कोई कपट छलयुक्त है मेरी शरण में आ जाने से वह निर्मल हो जाता है। कवि के कहने का भाव यह है कि प्रभुमिलन के लिये हृदय की शुद्धता परमावश्यक है। यदि आप का हृदय शुद्ध हो गया तो अहंकार भी नहीं रहेगा।

62. **ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।।**
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।। 57.2

अर्थ–ममता रत=ममता में फंसा हुआ, बिरति=वैराग्य, सम=शम, शान्ति, जथा=जिस प्रकार।

सागर के द्वारा विनय न मानने पर लक्ष्मण से राम ने कहा कि मेरे बाण और धनुष ले आओ। मैं अपने अग्नि बाण से सागर को सुखा दूँगा। दुष्ट से विनय, कुटिल से प्रेम, स्वाभाविक रूप से कंजूस से सुन्दर नीति, ममता में फंसे हुए से ज्ञान की कहानी, अधिक लोभी से वैराग्य की प्रशंसा, क्रोधी को शान्ति, कामी को भगवान् की कथा उसी प्रकार है जिस प्रकार ऊसर में बीज बोने का फल होता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ऊसर में बीज बोना व्यर्थ है, उसी प्रकार दुष्ट आदि को दिया विनय आदि का उपदेश व्यर्थ है। ममता ज्ञानबाधक है। इसलिए ज्ञानी इसका त्याग करता है। कंजूस अपनी चीज नहीं देता और लोभी दूसरे की चीज देता है। वस्तुतः शठता, कुटिलता, ममता, अतिलोभ, क्रोध और काम। ये सातों जीव के लिये प्रभुभक्ति में बाधक हैं। इसके विपरीत जीव के लिये विनय, प्रीति, सुनीति, ज्ञान, वैराग्य, शान्ति और सत्संग ये सात ही साधन हैं।

63. **ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।** 58.3

तुलसीदास जी ने प्रस्तुत काव्य के माध्यम से श्री राम के प्रति सागर की नम्रता प्रकट करने का वर्णन किया है। भयभीत सागर ने श्री राम के

चरण पकड़ कर कहा—हे स्वामी! मेरे सभी अवगुणों को क्षमा कर दीजिए। आकाश, वायु, अग्नि, जल और धरती के कार्य स्वाभाविक रूप से मूर्खतापूर्ण होते हैं। इन्हें आप के द्वारा प्रेरणा की गई माया ने उत्पन्न किया है। इनकी उत्पत्ति सृष्टि के लिए हुई है। ऐसा सभी ग्रन्थों ने कहा है। आप की आज्ञा जिसके लिए जैसी है, वह उसी प्रकार रहेगा तो सुख प्राप्त करेगा। हे स्वामी! आप ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा दे दी। मेरी मर्यादा तो हे स्वामी आपकी बनाई हुई है। ढोल, मूर्ख पुरुष, शूद्र, पशु और नारी—ये सभी ताड़ना अर्थात् पिटाई के अधिकारी हैं। नारी को ताड़न का अर्थ है उसे अनुशासन में रहना। तुलसी नारी निन्दक नहीं अन्यथा सीता, कौशल्या, सुनयना और अनसूया आदि पतिव्रता जैसा वर्णन मानस में न करते।

प्रस्तुत पंक्ति में तुलसी पर आरोप लगाया गया हे कि वे परम्परावादी थे। नारी और शूद्रों के प्रति उनका दृष्टिकोण संकुचित था। उन ब्राह्मणों को पक्षपात करने का भी आरोप लगाया गया। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि ये पंक्ति एक विशेष प्रसंग सागर द्वारा में कही गई हैं यह कवि का सामान्य मत नहीं है। वे केवल उन व्यक्तियों की बात कर रहे हैं जो अहंकार के कारण अपना विवेक खो बैठे हैं और मर्यादा का पालन नहीं करते हैं।

6. लंकाकाण्ड

नल, नील आदि वानरों ने बहुत शीघ्र सागर का पुल बना दिया और सब उस पुल पर होकर उसके पार पहुँच गये। लंका के पास ही इनकी सारी सेना जा टिकी। अंगद श्री राम का दूत बन कर लंका में गये और दरबार में बैठे हुए रावण से बहुत सी समझाने की बात कही। परन्तु रावण न माना। रावण ने अंगद को भी प्रलोभन देना आरम्भ किया। परन्तु अंगद पर उसके प्रलोभन का कोई असर न पड़ा।

जब रावण ने देखा कि मेरे बहुत से बड़े-बड़े सेनापति मारे गये तब उसको बड़ा क्रोध आया। उसने अपने वीर पुत्र मेघनाद को युद्ध के लिए भेजा। वह मेघनाद ऐसा वैसा वीर न था। वह बड़ा भयंकर योद्धा था। उसमें अत्यावश्यक बल था। उसने अपने पैने बाणों से बहुत से वानरों का मार गिराया। जब लक्ष्मण ने देखा कि हमारे बहुत से वानरों को उसने मार डाला, तब उसे बड़ा क्रोध आया और मारे क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गई।

अब लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध होने लगा। दोनों बड़े वीर थे। मेघनाद के पैने तीरों ने लक्ष्मण के शरीर को बींध दिया। क्रोध में आकर उसने भी मेघनाद को मारना आरम्भ कर दिया। इनकी मार से मेघनाद भी इतना विकल हो गया कि उसे अपने तन की भी सुध-बुध न रही। अब लक्ष्मण ने मेघनाद के सारथी और घोड़ों को मार गिराया और रथ को चूर-चूर कर दिया। जब मेघनाद ने देखा कि यह तो मुझे थोड़ी देर में मार ही डालेगा। तब उसने लक्ष्मण पर वीरघातिनी शक्ति मारी। वह शक्ति लक्ष्मण के कलेजे को पार कर गई। लक्ष्मण अचेत हो धरती पर गिर पड़े।

लक्ष्मण को देखकर वैद्य ने कहा कि एक संजीवनी बूटी हिमालय पर्वत पर है। वह लाई जाये तो उससे इनके प्राण बच सकते हैं। सूर्य उदय से पूर्व ही हनुमान जी श्री राम के पास संजीवनी बूटी को लेकर पहुँच गये। हनुमान जी की बुद्धिमानी को देखकर श्री राम उनसे बड़े प्रेम से मिले। वैद्य तो वहाँ बैठे ही थे। उन्होंने पर्वत पर से संजीवनी बूटी लेकर लक्ष्मण को सुंघा दी। उसे

सूंघते ही वे ऐसे उठ बैठे मानों सो कर उठे हों। कुम्भकर्ण भी बड़ा बलवान् था। वह युद्ध करने लगा। एक बार श्री राम ने ऐसा तीर मारा कि कलेजे के भीतर घुस गया और कुम्भकर्ण का काम तमाम हो गया।

जब रावण ने कुम्भकर्ण के मरने का समाचार सुना तब उसे बड़ा दुःख हुआ। फिर उसने अपने पुत्र मेघनाद को लड़ने के लिए भेजा। इसके गिरते ही वानर मारे खुशी के फूले न समाये। अब राक्षसों में भगदड़ मच गई। सब राक्षस भाग कर अपने-अपने घरों में जा घुसे। समाचार देने को भी रावण के सामने जाने की किसी की हिम्मत न पड़ी। बहुत कुछ जी कड़ा करके काँपते-काँपते कुछ राक्षस रावण के पास गये और उन्होंने नीचा सिर करके मेघनाद की मृत्यु का समाचार उससे कह सुनाया।

रावण युद्ध करने के लिए गया तभी श्री राम ने रावण पर 31 बाण एक साथ छोड़े। वह रावण को भयंकर सर्पों के समान जाकर लगे। एक बाण रावण की नाभि के नीचे स्थित 'अमृतकुण्ड' में लगा। शेष 30 बाणों ने उसके सिर और हाथ विच्छिन कर दिये। भूमि पर गिरे शीश और अंग लोट पोट हो रहे थे और कुछ समय नृत्य करके फिर शान्त हो जाते थे। इस प्रकार रावण मारा गया।

श्री राम ने लक्ष्मण और हनुमान जी को कहा कि तुम लोग विभीषण के साथ लंका में जाओ और बड़े आनन्द के साथ विधिपूर्वक विभीषण को राजतिलक करो। क्योंकि हम तो पिता की आज्ञा अनुसार नगर में नहीं जा सकते। अब वे सब लंका में जाकर विभीषण को राजतिलक कर आये। सीता भी उनको देख और पहचान कर बड़ी प्रसन्न हुई। फिर श्री राम ने सुग्रीव एवं विभीषण को बुला कर कहा कि वे हनुमान जी के साथ जाकर सीता को लंका से ले आओ।

तुरन्त ही आज्ञा पाकर वे लंका में पहुँचे। प्रभुकृपा से जब सीता लगभग 1 वर्ष पश्चात् रावण की क़ैद से लौटकर श्री राम के पास आई। इसके उपरांत श्रीराम ने लोकनिंदा से बचने के लिए पराए घर में रही सीता के

सतीत्व की कठोर परीक्षा ली। इसे ही मुहावरे में अग्नि परीक्षा कहते हैं। परन्तु कई पौराणिक भाइयो का विचार है कि सीता अग्नि में प्रवेश हुई और फिर बच गई। परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि यह सब असम्भव एवं सृष्टिक्रम के विरुद्ध है।

अब विभीषण लंका से एक पुष्पक विमान लाये। ऐसे सुन्दर और अनोखे विमान पर श्री राम, सीता और लक्ष्मण सहित सवार हो गये। पीछे से इनकी आज्ञा पाकर विभीषण, हनुमान, सुग्रीव आदि सब वानर भी उस पर चढ़ गये। जब सब सावधानी से बैठ चुके तब श्री राम की आज्ञा से वह विमान ऊपर को उठा और उत्तर दिशा की ओर आकाश मार्ग से ऊपर ही ऊपर चलने लगा। जब विमान ऊपर को उठा तब श्री राम ने आप लंका की खूब सैर की और सीता को भी कराई। श्री राम ने हनुमान जी को बुला कर कहा कि हे वीर ! तुम तुरन्त ही अयोध्या जाओ।

अब हनुमान जी पवन के समान वेग से उड़ कर चल दिये। वे शृंग्वेरपुर में राजा गुह से मिले। उनसे मिलकर वे अयोध्या को चल दिये। वहाँ देखा कि अयोध्या के निकट ही नंदिग्राम में एक महात्मा श्री राम की सूरत के, मृगशाला पहने बड़े शोकातुर और उदास अपने आश्रम पर सिंहसान बिछाये बैठे हैं। वे जटा रखाये हैं। सामने बड़ी सुन्दर राजगद्दी बिछा है। उस पर एक जोड़ा खड़ाऊँ की धरी है। बहुत पुरोहित मंत्री आगे बैठे हैं। राज का काम-काज हो रहा है। देखते ही समझ गये कि हो न हो ये भरत ही हैं।

14 वर्ष की अवधि पूरी होने को एक ही दिन शेष रहा था। भरत एवं अयोध्यावासी सब चिन्तित थे। तभी ब्राह्मण के वेष में हनुमान जी वहाँ पहुँच गये। भरत को राम के आगमन की शुभ सूचना दी तथा आश्वस्त (तसल्ली) करके कि आप श्री राम को प्राणों से भी प्रिय हैं, हनुमान श्री राम के पास लौट गये। उन्हें भरत के गहरे प्रेम की सूचना दी। राम-लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद सीता ने सासुओं को प्रणाम करके आशीर्वाद लिया। इसके पश्चात् श्री राम ने सुग्रीव आदि का सबसे परिचय कराया। मुनि वसिष्ठ ने

शुभ दिन देखकर शीघ्र ही अन्य ब्राह्मणों के साथ परामर्श करके राज्याभिषेक की तैयारी की। श्री राम ने भरत की जटा सुलझाई। तीनों भाइयों को स्नान कराकर स्वयं भी किया। सासों ने सीता को उबटना लगाकर नहलाया। तब श्री राम सीता के साथ सिंहासन पर बैठे। वैदिक रीति से राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ।

श्री राम ने पुत्रों को अपने पास बुलाकर उन्हें राज्य के शासन की विधि और प्रणालियों के विषय में बताया। फिर उन्होंने उन्हें औपचारिक रूप से शासन की बागडोर सौंप दी। उन्होंने भरत के पुत्र तक्ष को दक्षिणी साम्राज्य दिया। उनके दूसरे पुत्र पुष्कर को पुष्कर राज्य दिया। उन बालकों ने उन राज्यों के अवशिष्ट राक्षसों का नाश कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। चित्रकेतु तथा चित्रांगद नामक लक्ष्मण के पुत्र धुरन्धर योद्धा, शूरवीर तथा युद्ध में निपुण थे। उन्हें पश्चिमी क्षेत्र में भेजा गया जहाँ उन्होंने निशाचरों का नाश कर वहाँ राज्य किया। श्री राम ने उन्हें उन दो भिन्न-भिन्न नगरों का राज्य प्रदान किया जो बाद में उनकी राजधानियाँ बन गईं। उन्होंने सभी पुत्रों को राजनीति तथा प्रशासन सम्बन्ध विषयों पर अमूल्य उपदेश दिया। कुश को अयोध्या का राज्य सौंप गया। लव को सम्पन्न उत्तरी राज्य दिया गया। लवपुर (आधुनिक लाहौर) को उसकी राजधानी निर्धारित किया गया। श्री राम ने सभी को भरपूर मात्रा में गउएं, ग्राम, भूमि, वस्त्र और धन दान में दिया।

64. **सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।। 1.4।।**

शिवलिंग स्थापित करके विधिपूर्वक उसकी पूजा कर श्री राम ने सुग्रीव को उपदेश देते हुये कहा कि शिव जी के समान दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है। मैं शिव जी का अनन्य भक्त हूँ। अतः जो व्यक्ति शिवद्रोही है और मेरा भक्त कहलाता है वह व्यक्ति मुझे स्वप्न में भी नहीं पाता है।

65. **फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जल्द।**
मुरख हृदयँ न चैत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम।। सोठा 16(ख)

अर्थ – सुधा=अमृत, जलद=बादल, बिरचि=ब्रह्मा

तुलसीदास जी संतों को उपदेश देते हुये कहते हैं कि यद्यपि बादल अमृत सा जल बरसाते हैं फिर भी वह फूलता-फलता नहीं है। इसी भाँति मूर्ख के हृदय में ज्ञान का आविर्भाव नहीं होता है चाहे उसे ब्रह्मा एवं शिव ही गुरु क्यों न मिल जाये। कवि के कहने का भाव यह है कि मूर्ख एवं घमंडी व्यक्ति को ज्ञान देना व्यर्थ है। जैसे मंदोदरी आदि के समझाने पर रावण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

66. **प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।**

जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि।। दोहा 23(ग)

अर्थ–मृगपति=सिंह, मेडु=मेंढक

अंगद ने रावण से कहा हे रावण! आप सत्य कहते हो सुनकर भी क्रोध नहीं है। वस्तुतः हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है जो तुमसे लड़ने में शोभा पाये। प्रीति एवं विरोध बराबर वाले से कीजिए यह नीति कहती है। यदि सिंह मेंढकों को मारे तो क्या उसे कोई भला कहेगा। यहाँ पर अपने दल के सब योद्धाओं को सिंह और रावण को मेंढक कहा। जैसे मेंझक वध से सिंह की शोभा नहीं है वैसे ही परस्त्री हरण करने वाले के वध से हमारी शोभा नहीं है।

67. **सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी।**

तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवन सन सम चौदह प्रानी।। 30.2

अर्थ–श्रुति=वेद, अघ=पाप।

अंगद रावण को फटकारते हुए कहता है कि वाममार्गी, कामी, कृपण, अत्यंत मूढ़, बहुत ग़रीब, कलंकी, बहुत बूढ़ा, सदा रोगी रहने वाला, क्रोधयुक्त रहने वाला, विष्णु विमुख वेद एवं संत विरोधी, महान् पापी–ये 14 प्राणी जीवित ही मुर्दा तुल्य होते हैं। हे रावण! आप इनमें से एक हो। इसी कारण मैं तेरा वध करना चाहता। यहाँ पर अंगद रावण का यथार्थस्वरूप प्रस्तुत किया है।

68. **भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग ।**
कोटि बिघ्न ते संतकर मन जिमि नीति त्याग ।। दोहा 34(ख)

अर्थ–कपि=वानर (अंगद), रिपु=शत्रु, मद=अभिमान, भाग=दूर हो गया ।

अंगद रावण सम्वाद के समय जब अंगद ने अपना पाँव पृथ्वी पर टिका दिया और यह घोषणा कर दी कि यदि रावण के अतिरिक्त सभा में उपस्थित कोई भी योद्धा मेरा पैर पृथ्वी पर से उठा देगा तो हम युद्ध विराम की घोषणा कर देंगे । सब योद्धाओं ने जोर लगाया परन्तु कोई भी योद्धा अंगद के पाँव को पृथ्वी से उठा नहीं सका । इसलिए तुलसीदास जी संतों को उपदेश देते हुये कहते हैं कि अंगद का चरण पृथ्वी नहीं छोड़ती । यह देखकर शत्रु का गर्व दूर हो गया । जैसे करोड़ों विघ्न होने पर भी संत का मन नीति का परित्याग नहीं करता है ।

69. **काल दंड गहि काहु न मारा । हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ।।**
निकट काल जेहि आवत साईं । तेहि भ्रम होई तुम्हारिहि नाईं ।। 36.4

मन्दोदरी रावण को उपदेश देती हुई कहती है कि हे पति देव ! आप व्यर्थ में अभिमान कर रहे हो । क्योंकि श्री राम कोई साधारण मनुष्य नहीं है । मन्दोदरी रावण को समझाती हुई कहती है कि काल किसी को दण्ड लेकर नहीं मारता है । अर्थात् वह धर्म, बल, बुद्धि एवं विचार हर लेता है । हे स्वामी ! काल जिसके निकट आता है उसे आप ही समान भ्रम हो जाता है । यहाँ मन्दोदरी की वाक्यपटुता देखिये । वह यह नहीं कहती है कि आप का काल निकट आ गया है अपितु कहती है जिसका काल निकट आता है ।

70. **साम दान अरु दण्ड बिभेदा । नृप उर बरुहिं नाथ वह बेदा ।।**
नीति धर्म के चरन सुहाए । अस जिम जानि नाथ पहिं आए ।। 37.5

श्री राम ने अंगद से प्रश्न किया कि हे अंगद ! आपने रावण के चार

मुकुट फेंके। इसका क्या भाव है। अंगद ने श्री राम को उत्तर दिया हे सर्वज्ञ! हे शरणागति को सुख देने वाले। सुनिये। ये मुकुट नहीं है अपितु राजा के चार गुण साम, दान, दंड और भेद हैं। ये नीति धर्म के सुन्दर चरण हैं। ऐसा जी से जानकर ये स्वामी के पास आये हैं। ये रावण के यहाँ अनाथ पड़े थे। इनसे वह संदा चिढ़ता था, इनका अनादर करता था। नीति कहने वालों से बिगड़ उठता था। आपने विभीषण को राजा बनाया है अतः राजनीति के चारों अंग अपने नाथ के पास आ गये। रावण अब राजा नहीं है उसके पास क्यों रहें।

71. **पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं वे नर न घनेरे।।** —77.1

जिस समय लक्ष्मण मेघनाद का वध कर देता है। जब मंदोदरी पीट-पीट कर रोने लगती है। रावण वहाँ पर उपस्थित नारियों को कहता है कि सारा संसार नाशवान् है आगे वह कहता है कि सत्य तो यह है कि संसार में दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण है परन्तु ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो उस पर आचरण करते हैं। जैसे मानस पीयूष (खण्ड-6) में लिखा है—

दूसरों को सिखाने में पण्डिताई करना सभी मनुष्यों को सहज है पर अपने धर्म में दृढ़ता लगे रहना किसी-किसी ही महात्मा में पाया जाता है। पृ० 391

इसके विषय में उर्दूशायर इक़बाल भी लिखते हैं—

(1) **इक़बाल बड़ा उपदेशक है, मन बातों से मोह लेता है।**
गुफ़्तार का ग़ाजी तो बना, किरदार का यह बन न सका।।

(2) **अमल से ज़िन्दगी बनती है, जगत भी जहन्नुम भी।**
ये साकी अपनी फ़ितरत से न नूरी है न नारी है।।

अर्थ—गाज़ी=धर्मयोद्धा, किरदार=आचरण, साकी=व्यक्ति, नूरी=फरिश्ता, नारी=शैतान।

72. **आवत देखि सक्ति अति घोरा । प्रनतारति अंजन पन मोरा ।**
तुरत बिभीषन पाछें मेला । सन्मुख राम सहज सोइ सेला । । 93.1

मातलि नामक सारथी के घायल होने के पश्चात् सारथी का काम विभीषण करते हैं क्योंकि श्री राम रथ पर सवार थे, रावण का रथ सामने है, दोनों और से अस्त्र-शस्त्र चल रहे हैं । बीच में विभीषण कहाँ से चला आया । अतः रावण ने उन पर शक्ति छोड़ी । तुलसीदास जी कहते हैं कि अत्यन्त भयानक शक्ति को आते देख हमारा प्रण है शरणागत के दुःख का नाश करना । अतः श्रीराम ने तुरन्त विभीषण को पीछे करके सामने आकर वह शक्ति स्वयं सह ली ।

73. **खैंचि सरासन श्रवन लगि छाई सर एकतिस ।**
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस । । दोहा 102

सरासन धनुष श्रवत =कानों तक

अर्थ–सायक=बाण, कालफनीस=कार्लसर्प

राम रावण का घोर युद्ध होने लगा । श्री राम के भरसक प्रयत्न के पश्चात् भी वह रावण का वध नहीं कर सके । फिर विभीषण ने श्री राम को कहा कि इसकी नाभि में अमृतकुण्ड है पहले तीर मार कर उसे सुखाये फिर यह मरेगा । आगे तुलसी दास जी कहते हैं कि श्री राम ने कानों तक धनुष खींच कर रावण पर 31 बाण चलाये । उनके बाण ऐसे चले मानों कालसर्प चल रहे हों ।

74. **सायक एक नाभि सर सोषा । अपर लगे भुज सिर करि रोषा ।**
लै सिर कहु चले नाराचा । सिर भुज हीन रुंड महि नाचा । । 102.1

अर्थ–मयंक=बाण, सुर=अमृतकण, सोपा=सुखा दिया ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि एक बाण ने नाभि के अमृत कुण्ड को सोख दिया । अन्य 30 बाण कोप करके उसके सिर एवं भुजाओं में जा लगे ।

बाण सिरों और भुजाओं को काट कर ले चले। सिर भुजरहित धड़ पृथ्वी पर नाचने लगा। इस प्रकार रावण मारा गया।

75. **उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।**
राम कृपा नहिं करहिं तसि जभि निष्केवल प्रेम।। दोहा 117(ख)

जब श्री राम न रावण पर विजय प्राप्त कर ली थी और विभीषण ने अयोध्या जाने के लिये पुष्पक विमान लाकर आगे खड़ा कर दिया जिन्हें मुनि ध्यान में भी नहीं पात एवं जिन्हें वेद नेति नेति कहते हैं वही राम वानरों से विनोद कर रहे हैं। इस पर शिव उमा को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे उमा! अनेकों प्रकार के योग, जप, तप, यज्ञ, व्रत एवं नियम करले परन्तु श्री राम वैसी कृपा नहीं करते हैं जैसे शुद्ध प्रेम करने से करते हैं। कहने का भाव यह है कि प्रभु प्रेम के भूखे हैं न कि योग, जप, तप आदि के नहीं।

7. उत्तरकाण्ड

14 वर्ष की अवधि पूरी होने को एक ही दिन शेष रहा था। भरत एवं अयोध्यावासी सब चिन्तित थे। माता और भाई शुभ सगुन देखकर श्री राम के आने की आशा में प्रसन्न हो रहे थे। भरत की दायीं आँख और भुजा बारंबार फडक रही थी। वे चिन्तित थे कि श्री राम आये क्यों नहीं। तभी ब्राह्मण के वेष में हनुमान वहाँ पहुँच गये। श्री भरत को श्री राम के आगमन की शुभ सूचना दी एवं आश्वस्त करके कि आप श्री राम को प्राणों से प्रिय हैं, हनुमान श्री राम के पास लौट गये। उन्हें भरत के गहरे प्रेम की सूचना दी।

इधर माताओं को श्री राम के पहुँचने की सूचना दी और मन्त्रियों तथा नगरवासियों को स्वागत की तैयारियाँ करने को कहा। श्री राम के स्वागत के लिए मधुपर्क (दूध, दही आदि) सजाकर सब लोग उनके स्वागत के लिए आगे बढ़े। उधर राम, सुग्रीव आदि को अपनी नगरी और पास के स्थान दिखाते आ रहे थे। नगरवासियों को अगवानी के लिए आता देखकर श्री रामचन्द्र जी ने विमान को वही उतारने को कहा। विमान से सब के उतरने के बाद उन्होंने पुष्पक विमान को तो पूर्व स्वामी कुबेर के पास जाने को कहा। आगे आकर उन्होंने गुरु वसिष्ठ, वामदेव आदि को प्रणाम किया। तब प्रणाम करते भरत को उठाकर गले लगाया। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सब मिले। भरत और शत्रुघ्न ने सीता को प्रणाम किया। नगरवासियों को आता देखकर श्री राम चन्द्र ने अनेक रूप धारण करके सबसे भेंट की, उधर तीनों माताएँ श्री राम को आया देखकर विकल होकर दौड़ी। राम-लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। इसके पश्चात् सीता ने सासुओं को प्रणाम करके आशीर्वाद लिया। तदनन्तर श्री राम ने सुग्रीव आदि का सबसे परिचय कराया। मुनि वसिष्ठ ने शुभ दिन देखकर शीघ्र ही अन्य ब्राह्मणों के साथ परामर्श करके राज्याभिषेक की तैयारी की। श्री राम ने भरत की जटा सुलझाई। तीनों भाइयों को स्नान कराकर स्वयं भी किया। सासों ने सीता को उबटना लगाकर नहलाया। तब राम सीता के साथ सिंहासन पर बैठे।

वैदिक विधि से राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। वेद स्वयं बन्दी के वेष में

स्तुति करने आये। शंकर जी ने भी स्तुति की। राज्याभिषेक होने के पश्चात् श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव आदि को भवनों में टिकाया। उन्हें रहते 6 महीने बीत गये परन्तु घर जाने का विचार ही न आता था। तब श्री राम ने उन्हें वस्त्र-भूषण आदि से सम्मानित करके विदा किया। अंगद जाना नहीं चाहते थे। श्री राम ने उन्हें भी समझा-बुझाकर विदा किया। हनुमान ने सुग्रीव से कुछ दिन और राम की सेवा करने की अनुमति माँगी। राम राज्य में नगर निवासी सब सुखी थे, नगर और राज्य में समृद्धि छा गई थी। एक बार श्री राम भाइयों और हनुमान के साथ बाग़ में गये जहाँ सनकादि आये। उन्होंने भगवान् की स्तुति की और ब्रह्मलोक को चले गये।

कुछ समय के पश्चात् श्री राम के कुश और लव दो पुत्र हुए। अन्य भाइयों के भी दो दो पुत्र हुए। एक बार श्री राम ने नगरवासियों को बुलाया और उन्हें सदाचार का उपदेश दिया। साथ में शिक्षा दी कि मेरी भक्ति करने वाला कभी भूलकर भी शिव जी से वैर न करे। उनकी भक्ति करने से ही मेरी भक्ति मिलती है। एक दिन मुनि वसिष्ठ श्री राम के पास आये। उन्होंने बताया कि ब्रह्मा जी के कहने से पुरोहित का निन्दित कार्य मैंने इसी आशा से स्वीकार किया था कि एक दिन साक्षात् ब्रह्म आप रघुवंश में प्रकट होंगे। कृपया मुझे जन्म-जन्मान्तर में अपने चरणों में प्रेम प्रदान करें।

पार्वती से इस प्रकार रामकथा सुनकर बड़े आनन्द का अनुभव किया। इसके बाद पूछा कि गरुड का कागभुशुण्डि के साथ समागम कैसे हुआ। कौवे की भगवान् में भक्ति कैसे हुई तथा ऐसा भक्त कौवे की नीच योनि में कैसे गया। शंकर जी ने सुनाया कि सती शरीर में जब दक्ष के यज्ञ में तुमने अपमानवश प्राण त्यागे, तुम्हारे विरह में कैलास के आसपास भ्रमण करते सुमेरु के समीप एक आश्रम देखा जहाँ वह पक्षी देखने में आया। निर्विकार या जिसे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ समय मैं वहाँ रहा। लंका में रावण के साथ युद्ध के दिनों में जब मेघनाद की छोड़ी नागपाश से राम और लक्ष्मण बन्दी हो गये और नारद के कहने से गरुड ने जाकर दोनों को मुक्त

किया तो श्री राम के स्वरूप के सम्बन्ध में बहुत सन्देह हो गया कि यदि वे स्वयं भगवान् हैं तो वे नागपाश से कैसे बंध गये ।

गरुड के सन्देह को जानकर नारद ने उन्हें ब्रह्मा जी के पास उसके समाधान के लिए भेजा । ब्रह्मा जी ने भी विचार कर उन्हें मेरे पास भेजा । गरुड जिस समय मेरे पास आये, मैं कुबेर के यहाँ जा रहा था । वे मुझे मार्ग में मिले और अपनी समस्या सुनाई । मैंने समझाकर कहा कि ऐसे प्रश्नों का समाधान दीर्घकाल तक सत्संग करने से होता हैं मैं इस समय पथ में हूँ । तुम कागभुशुण्डि के पास जाओ । वे तुम्हारे संशय को दूर करेंगे । गरुड कागभुशुण्डि का आश्रम-स्थल जानकर सीधे वहाँ गये । उन्हें आया देखकर कागभुशुण्डि ने उनका बड़ा सत्कार किया और आसन पर बैठाया । इसके पश्चात् आने का कारण पूछा । गरुड ने उस आश्रम में आने से सन्देह के दूर होने की बात कहकर रामकथा सुनाने की प्रार्थना की ।

कागभुशुण्डि ने भी प्रसन्न होकर श्री राम की बाललीला से लेकर वनवास का वृतान्त और रावण को मारकर अयोध्या लौटने तक की सारी कथा विस्तार से सुनाई । कथा सुनकर गरुड ने कहा कि मुझे भगवान् के मनुष्यों के से आचरण के कारण बहुत भारी सन्देह हो गया था । परन्तु तुम से कथा सुनकर वह दूर हो गया है । तब कागभुशुण्डि न भगवान् की माया को अजेय बताते हुए अपने मन में हुए सन्देह की बात कहकर सुनाई । एक बार जब प्रभु रामावतार लेकर अयोध्या में गये, मैं भी छोटे कौवे का रूप धारण करके वहाँ गया और उनके साथ खेलता हुआ पाँच वर्ष वहाँ रहा । वे मुझे पकड़ने की चेष्टा करते थे, मैं उड़कर कुछ हट जाता । वे मुझे पकड़ न पाते थे । यह देखकर मुझे भ्रम हो गया कि ये तो मनुष्य बालक लगते हैं जो मुझे पकड़ नहीं सकते । तब भगवान् ने मुझे पकड़ना चाहते हुए बांहें फैलाई । मैं वहाँ से भाग चला, सात लोकों को भी पार करके जहाँ-जहाँ गया बांह फैलाये प्रभु को आते देखा, तब मैंने डरकर आँखें मूँद लीं आँखें खोली तो अयोध्या में था ।

मेरी दशा देखकर श्री राम मुस्कराने लगे, वे जैसे ही हँस रहे थे, सहसा

उनके मुख में प्रविष्ट हो गया। भीतर जाकर चराचरात्मक ब्रह्माण्ड उनके उदर में दिखाई दिया जिसमें अनेकों अयोध्या, दशरथ, कौसल्या आदि दिखाई दिये। अनेक सृष्टि और प्रलय, रामावतार वहाँ देखें। देखकर मैं भ्रान्त हो गया। मुझे परेशान देखकर भगवान् ने मुस्कराकर मुख खोला और मैं बाहर निकल आया। वे फिर मुझसे बालक्रीडा करने लगे। मैं पुनः भ्रम में पड़ गया और उनकी शरण में निकल आया। तब उन्होंने अपनी माया समेट ली तथा कृपा करके मुझ पर अपना हाथ फेरा। मुझे उन्होंने वर मांगने को कहा। मैंने भी विचार कर उनसे अटूट भक्ति मांगी तो उन्होंने एवमस्तु कहकर अपनी माया कह कर माया की प्रबलता का वर्णन किया। साथ ही भक्ति की महिमा बताई और वर दिया कि तुझ पर काल का प्रभाव न होगा। तब वे पुनः अपनी बालक्रीडा करने लगे। तभी माता दौड़कर आई और उन्हें भूखा जानकर दूध पिलाने लगी। मैं कुछ समय वहाँ रहकर अपने आश्रम लौट आया।

गरुड ने यह सुनकर कागभुशण्डि की प्रशंसा की और पूछा कि इतने ज्ञानवान और भक्त होने पर भी तुम्हें यह जून कैसे मिली। तब कागभुशुण्डि ने पूर्व कथा सुनाई। एक जन्म में कलियुग में अयोध्या में जन्म लिया जबकि सब लोग पाप लिप्त हो गये थे। सब धर्ममार्ग लुप्त थे, अनेक पाखण्ड प्रचलित थे। उस समय मैं उज्जैन चला गया। मैं शूद्र था। वहाँ एक शिवभक्त वेदज्ञ ब्राह्मण की मैंने छलपूर्वक सेवा की। वह मुझे भक्ति एवं ज्ञान-वैराग्य का उपदेश देता था। परन्तु मैं उन पर ध्यान न देता था। मैं शिवभक्त अवश्य था परन्तु विष्णु निन्दक था। वह ब्राह्मण मेरा गुरु था, मेरा आचरण देखकर दुःखी होता और मुझे नित्य उपदेश देता था। परन्तु मैं उस पर ध्यान नहीं देता था। एक बार मैं शिवमन्दिर में शिवजी का नाम जप रहा था, उसी समय गुरु जी वहाँ आ गये परन्तु मैंने अभिमानवश उन्हें उठकर प्रणाम नहीं किया। गुरु जी ने तो इस पर कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु शंकर जी इस अपराध को नहीं सह सके। उसी समय भयंकर आकाशवाणी हुई और मुझे अजगर बन जाने का शाप दिया।

यह सुनकर दयालु गुरु ने शंकर जी की स्तुति की और उनसे मुझे क्षमा

करने की प्रार्थना की कि इस पर शाप का प्रभाव थोड़े ही समय तक रहे। तब पुनः आकाशवाणी हुई कि मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायेगा। इसे हज़ार बार जन्म अवश्य लेने पड़ेंगे परन्तु जन्म-मरण का दुःख नहीं भोगेगा। प्रत्येक जन्म में यह ज्ञानी बना रहेगा।

मैंने अनेक शरीर धारण किये। सबमें शिव जी की कृपा से मेरा ज्ञान और स्मृति बनी रही, हाँ गुरु के अपमान का दुःख सदा सालता (चुभता) रहा। अन्तिम बार मुझे एक ब्राह्मण के घर जन्म मिला। उसमें भी मैं बच्चों के साथ खेलता हुआ भगवान् की लीला करता था। कुछ बड़ा होने पर पिता ने मुझे वेदादि शास्त्र पढ़ाने चाहे परन्तु उनमें मेरा मन नहीं लगता था। केवल राम के चरणों में वृत्ति रमी थी। इसलिए पिता का प्रयत्न सफल न हुआ। कुछ समय बाद उनका निधन हो गया। मैं स्वतन्त्र हो गया और प्रभुभक्ति में लग गया। अनेक मुनियों के आश्रमों में जाता और उनसे राम के गुणगान की बात कहना। उनके मुख से रामभक्ति सुनता। ऐसा करने से मन से और तो सब कामनाएँ दूर हो गई पर एक इच्छा प्रबल हो गई कि श्री राम के चरण-कमलों का मैं दर्शन करूँ। जिन-जिनके पास भी जाता उसी से इसका उपाय पूछता। परन्तु वे सब कहते कि भगवान् तो सर्वव्यापक है। उनका ध्यान करो। यों प्रत्यक्ष उनके दर्शन कैसे सम्भव हैं।

इसी लालसा में घूमता हुआ सुमेरू पर्वत के शिखर पर लोमश महर्षि के आश्रम में गया। आने का कारण पूछने पर मैंने उनसे सगुण ब्रह्म की उपासना का मार्ग पूछा। उन्होंने कछ देर श्री राम का चरित्र सुनाया और फिर निर्गुण का उपदेश देने लगे। मैं उन्हें बारबार सगणोपासना का मार्ग बताने के लिए रोकता। बार-बार ऐसा करने से उन्हें क्रोध आ गया और मुझे कौवा बन जाने का शाप दे दिया। उनके शाप से मैं शीघ्र ही कौवे के शरीर में आ गया। उनको प्रणाम करके मैं उड़ चला, यह एक प्रकार से मेरी परीक्षा ही थी। मैं जब मन, कर्म और वचन से रामभक्ति में लगा रहा, मुनि पर क्रोध नहीं किया तो भगवान् ने कृपा करके लोमश ऋषि की बुद्धि में पुनः परिवर्तन किया। उन्हें अपने शाप पर पश्चाताप हुआ। कृपा करके उन्होंने मुझे

बताया ।''समझा-बुझाकर मुझे राम मंत्र की दीक्षा दी । साथ में श्री राम के बाल रूप का ध्यान करने का उपदेश दिया जो मुझे बहुत भाया ।

कुछ समय तक उन्होंने मुझे अपने पास रखा और शंकर जी का कहा रामचरितमानस मुझे सुनाया और कहा कि यह कथा रामभक्ति से दूर रहने वालों को कभी न सुनाना वे इसके अधिकारी नहीं हैं । इसके पश्चात् मेरे शरीर पर हाथ फेरकर कभी भी रामभक्ति से विमुख न होने का आशीर्वाद दिया प्रभु कृपा से सभी इच्छाएँ पूर्ण होने का आशीर्वाद दिया । आकाशवाणी ने भी इनकी बात का समर्थन दिया । तब मैं प्रसन्न मन से उन्हें प्रणाम करके इस आश्रम में चला आया । यहाँ रहते मुझे 27 कल्प बीत गये हैं । जब -जब श्री राम अयोध्या में जन्म लेते हैं मैं वहाँ जाकर उनकी बालक्रीडा देखा करता हूँ । तब कागभूशुण्डि ने गरुड को ज्ञान वैरागय का उपदेश देते हुए भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध की, गरुड ने 7 प्रश्नों के उत्तर दिये । तब कृतार्थ होकर गरुड ने कागभूशुण्डि के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उन्हें प्रणाम किया तथा वैकुण्ठ को चले गये ।

76. दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति ।। 20.1

अर्थ–दैहिक=शरीर के, दैविक=भाग्यवश होने वाले, भौतिक= प्राकृतिक, व्यापा=प्रभावित करते थे, श्रुति नीती=वैदिक मार्ग

श्री राम के राज्य में किसी भी प्राणी को शारीरिक, अदृष्ट से अकस्मात् होने वाले अथवा प्रकृति के दिए कष्ट प्रभावित नहीं करते थे। लोगों में लड़ाई झगड़ा नहीं होता था । सब लोग आपस में प्रेम से रहते थे, अपने-अपने धर्म का पालन करते थे तथा वैदिक मार्ग पर चलते थे ।

77. बड़े भाग पाइब सतसंगा । बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा ।। 32.4

अर्थ–भव भंगा=संसार बंधन से छुटकारा ।

कवि मुनियों के प्रति श्री राम के वचनों का उल्लेख कर रहा है । श्री राम ने कहा–हे मुनिश्रेष्ठो ! आज आप लोगों के आगमन से मैं सर्वथा धन्य हो गया । आपके दर्शनों से पाप रूपी राक्षस नष्ट हो जाते हैं ।

आप जैसे सत्पुरुषों की संगति तो बड़े भाग्य से मिलती है। उसका प्रभाव यह है कि बिना ही विशेष प्रयत्न किये संसार के बन्धन कट जाते हैं।

78. **संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।।**
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देह सुगंध बसाई।। 36.4

अर्थ– असि=ऐसा, आचरनी=व्यवहार।

श्री राम भरत के प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं, हे भाई! सत्पुरुषों और दुष्टों के काम उसी प्रकार पृथक्-पृथक् होते हैं जैसे कि कुल्हाड़ी और चन्दन के व्यवहार में फर्क होता है। फरसा तो अपनी तीखी धार से चन्दन के वृक्ष को काटता है। परन्तु चन्दन अपने सत्य गुण से उस फरसे को सुगन्धित कर देता है। तात्पर्य यह है कि दुर्जन व्यक्ति का स्वभाव दूसरे का अपकार करना ही होता है परन्तु सत्पुरुष उसके विपरीत अपने साथ किये गये दुर्व्यवहार को भी भुलाकर उसका उपकार ही करता है।

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड।। दोहा 37

अर्थ – जग बल्लभ = संसार भर को प्रिय, श्री खंड = चंदन

श्री राम दुष्टों और सत्पुरुषों के पृथक्-पृथक् लक्षण बता रहे हैं। इसी कारण चन्दन सारे जगत् को प्रिय है और देवताओं के सिर पर चढ़ाया जाता है। इसके विपरीत फरसे के मुख को आग में खूब तपाकर घन से उसे खूब पीटते हैं। इस प्रकार अपने दुर्व्यवहार के लिए फरसे को यह सज़ा दी जाती है।

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख सुख सुख देखे पर।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।। 37.1

अर्थ – अलंपट=लोभीपन न हो, गुनाकर=गुणों की खान, अभूतरिपु=अजात शत्रु, बिमद=अभिमान रहित, लोभामरष=लालच और क्रोध।

श्री राम भरत को सत्पुरुष के लक्षण समझा रहे हैं । सत्पुरुष वे ही हैं जो संसार के भोगों में लालसा न रखते हों, शील उत्तम चरित्र एवं अन्य गुणों की खान, दूसरों के दुःख में दुःख और पराये सुख में सुख का अनुभव करें, सबके प्रति समता का भाव रखते हों, अजातशत्रु हों, कोई शत्रु न हुआ हो, अहंकाररहित हो, विराग हो, लालच, क्रोध, हर्ष और भय को त्यागने वाला हो । तात्पर्य यह है कि प्रशंसा या सुख पाकर प्रसन्न न हों और निन्दा अपमान आदि से क्रोध न करें, दूसरे को अपने से भिन्न न समझे, जिससे भय का अनुभव हो ।

कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ।।
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ।। 37.2

अर्थ–दाया=दया, अमाया=छल और दिखावे से रहित, मानप्रद= आदर देने वाले, अमानी=अभिमान न करने वाले ।

श्री राम भरत को सज्जन का लक्षण समझा रहे हैं । उन सत्पुरुषों का मन बहुत कोमल होता है, इस कारण वे दूसरे के कष्ट को देखकर तुरन्त पिघल जाते हैं । जो गिरी अवस्था में हो, उन पर दया करते हैं, सच्चे मन, वाणी और कर्म से मेरी भक्ति करते हों, उसमें दिखावा न हो, वह और सभी का आदर करें परन्तु स्वयं अभिमान न करे, हे भरत ! वे लोग मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं ।

बिगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ।।
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ।। 37.3

अर्थ–मुदितायन=सुख-दुःख में सदा प्रसन्न रहने की आदत, मयत्री=मैत्री, जनयत्री= उत्पन्न करने वाली ।

श्री राम भरत को सत्पुरुष का लक्षण समझा रहे हैं । उनकी कामवासना अथवा सभी प्रकार की कामनाएँ मिट चुकी हों, सदा मेरा नाम जपने में तत्पर रहे । शान्ति, विरक्ति और मुदिता वृत्ति का घर हो, ये तीनों वृत्तियाँ उसके मन में सदा रहती है । उसके स्वभाव में ठंडक हो, उग्रता न हो, निश्छलभाव हो, सबके प्रति मित्रता रखता हो, धर्म की भावना

उत्पन्न करने वाला ब्राह्मणों के चरणों में प्रेमभावना हो। स्वभाव में शान्ति, निश्छलता, मैत्री और ब्राह्मणों के चरणों में भक्ति ये सभी वृत्तियाँ धर्म को उत्पन्न करने वाली हैं।

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं।। 37.4

अर्थ–फुर = स्पष्ट।

श्री राम भरत को सत्पुरुष के लक्षण समझा रहे हैं। जिसके अन्तर में ये सभी विशेषताएँ हों, उस व्यक्ति को सदा स्पष्ट रूप से सत्पुरुष जानना। वे कभी भी मनसिक विकारों का शमन, इन्द्रिय दमन, व्रत पालन और सदाचार के मार्ग से विचलित नहीं होते, कभी किसी से कठोर शब्द नहीं बोलते हैं।

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज।। दोहा 38

अर्थ – उभय = दोनों, ममता = प्रेम, गुनमन्दिर = गुणों का घर, सुखपुंज = सुखों की राशि।

श्री राम भरत के प्रति सत्पुरुषों के लक्षण बताते हुए कहते हैं वे सज्जन पुरुष अपनी बुराई एवं प्रशंसा दोनों के समान भाव से लेते हैं अर्थात् न निन्दा सुनकर क्रोध करते है और न बड़ाई सुनकर प्रसन्न होते हैं। मेरे चरण कमलों से ही उन्हें प्रेम होता है, शेष संसार की वस्तुओं से नहीं। ऐसे गुणों के भण्डार एवं सुखों की राशि वाले सज्जन मुझे प्राणों से भी प्रिय होते हैं।

79. **सुनह असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिउ न काऊ।।**
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई।। 38.1

अर्थ – कपिलहि=दुधारू कपिला, घालइ=बिगड़ती है, हरहाई=जो हर समय इधर उधार भागती है।

श्री राम भरत जी को अब दुर्जनों के लक्षण समझा रहे हैं। अब तुम दुष्टों का स्वभाव सुनो। उनकी संगति कोई भी न करे। क्योंकि उनकी

संगति सदा कष्ट ही देती है जैसे कि हड़काई गाय स्वयं तो परेशान रहती ही है, वह शान्त और दुधारू गाय को भी खराब करती है। हड़काई गाय सदा इधर से उधर दौड़ती रहती है दूसरी सीधी गाय को भी सींग मारकर भगाने का प्रयत्न करती है।

सलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी।
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।। 38.2

अर्थ–ताप=अशांति, निधि=ख़जाना।

श्री राम भरत को दुष्टों के स्वरूप का उपदेश देते हुए कहते हैं कि दुष्टों के मन में अत्यधिक अशांति रहती है। वे सदा दूसरे लोगों की सम्पत्ति को देखकर इर्ष्या-द्वेष में जला करते हैं और यदि कहीं भी दूसरों की बुराई सुनने को मिल जाये तो वे इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि मानो उन्हें कहीं पड़ा हुआ ख़जाना मिल गया हो।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।। 38.3

श्री राम भरत को दुष्टों का स्वरूप समझा रहे हैं। वे दुर्जन सदा कामवासना, रोष, अहंकर और लालच इन्हीं में तत्पर रहते हैं। वे क्रूर प्रकृति के कपट का भाव रखने वाले, टेढे और सभी बुराइयों के घर होते हैं। वे हर किसी से बिना ही कारण शत्रुता करते हैं, जो उनके साथ भलाई करे, उसको भी हानि पहुँचाने से नहीं चूकते।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।। 38.4

अर्थ–महा अहि=बड़े सर्प को।

श्री राम भरत से दुष्टों के लक्षण बता रहे हैं। उन लोगों का सारा व्यवहार झूठ से भरा होता है। वे लेन-देन के व्यवहार में झूठ का ही आश्रय लेते हैं। जिस भाँति बिना भोजन के किसी की तृप्ति नहीं होती उसी भाँति बिना झूठ के उनसे रहा नहीं जाता। ज़्यादा लेकर कम बतलाना तथा कम देकर अधिक माँगना, कभी बिना कुछ दिये ही

माँगने लगना यह सब व्यवहार झूठ पर आश्रित रहता है । उनका पीना और चाबना सब में झूठ ही भरा होता है । तात्पर्य यह है कि खाते कुछ हैं और बताते कुछ हैं । या भरपेट खा कर भी कुछ नहीं खाया यही कहते हैं । चाबते चने हों पर बादाम बताते हैं इस प्रकार उनका कार्य मिथ्या पर आश्रित होता है । वे मोर की भाँति सुनने में आकर्षक मीठा वचन बोलते हैं परन्तु विषैला साँप खा जाते हैं । उसी प्रकार दुष्टों के वचन मन में चुभते हैं । तात्पर्य यह है कि मोर की बोली सुनने में बड़ी मधुर होती है । परन्तु उसका अन्तर कितना कठोर है कि साँप को भी खा जाता है । इसी प्रकार वे दुष्ट बोलेंगे मिठास लाकर परन्तु उनकी बात तीखी होने से मन को बींध देती है ।

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद । । 39 । ।

अर्थ – परद्रोही=दूसरों से द्वेष रखते हैं, पर दार रत=दूसरों की स्त्रियों में आसक्त रहते हैं, अपबाद=निन्दा, मनुजाद=राक्षस ।

श्री राम भरत से दुर्जनों का लक्षण बता रहे हैं । वे दुष्ट सदा दूसरों से बैर रखते हैं, पराई स्त्रियों में आसक्त रहते हैं, दूसरों के धन को ही हड़पने में उनका ध्यान रहता है । दूसरों की निन्दा करने में लगे रहते हैं । ऐसे व्यक्ति नीच और पापी होते हैं, वे मानव का शरीर धारण किये राक्षस होते हैं ।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न । ।
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई । स्वास लेहिं जनु जुड़ी आई । । 39.1

अर्थ– डासन=बिछौना, जमपुर त्रासन=यमलोक को डराने वाले, जुड़ी=सर्दी का बुखार ।

श्री राम भरत को दुर्जनों के लक्षण बता रहे हैं । उन दुष्टों का लालच ही ओढना है और लालच ही बिच्छवन है । अर्थात् उनके प्रत्येक कार्य में लालच की ही प्रमुखता रहती है । काम सुख और अपनी उदरपूर्ति यही उनका परम लक्षण रहता है । वे अपनी करतूत से यमलोक को भी

डराने वाले हैं अथवा उन्हें ये कर्म करते नरक का भी भय नहीं रहता। यदि वे कहीं किसी की प्रशंसा सुन लेते हैं तो दुःख के एवं ईर्ष्या के सारे ऐसे लम्बे साँस लेते हैं जैसे कि सर्दी का बुखार चढ़ गया हो।

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ भए मानहुँ जग नृपती।।
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी।। 39.2

वे यदि किसी को विपत्ति में पड़ा देख लेते हैं तो वे प्रसन्न होते हैं कि मानों सारे संसार के राजा बन गये हैं। वे केवल अपना उल्लू साधने में लगे रहते हैं, अपने परिवार से भी उनका विरोध चलता है, काम और लालच में आसक्त रहते हैं और अत्यन्त क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं।।
करहि मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा।। 39.3

अर्थ–घालहि=बर्बाद करते हैं, परावा=पराया, भावा=प्रेम।

वे लोग माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी का आदर करना नहीं जानते। वे चरित्र से स्वयं तो भ्रष्ट होते ही हैं, औरों को अपनी संगत और प्रभाव से बर्बाद करने से नहीं चूकते। वे अज्ञान में पड़े होने से व्यर्थ में दूसरों से ईर्ष्या-द्वेष करते हैं। उन्हें सत्पुरुषों की संगति और हरिकथा सपने में भी अच्छी नहीं लगती या उनमें उन लोगों की रुचि नहीं होती है।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। वेद विदूषक परधन स्वामी।।
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरे सुवेषा।। 4

अर्थ–दंभ कपट जियँ=हृदय में दिखावा एवं छल भरा रहता है।

वे लोग दोषों के तो सागर होते हैं, मोटी अक़्ल के कामवासना के सताये, वेद-विदूषक वेदों में दोष निकालने वाले, वेद की निन्दा करने वाले, पराया धन हड़पकर उसके स्वामी बन बैठते हैं, ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं, दूसरों से बैर रखना उनकी विशेष वृत्ति है, उनके मन में तो आडम्बर प्रियता और छल छिद्र भरे रहते हैं परन्तु ऊपर से सुन्दर वेष धारण किये रहते हैं।

ऐसे अधम मनुज चाल कृतजुग त्रेताँ नाहिं ।
द्वापर कछुक कूंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ।। दोहा 40

अर्थ – अधम=नीच, कृतजुग=सत्युग, बृन्द=समूह ।

श्री राम कलियुग में ऐसे लोगों की बहुतायत बता रहे हैं । ऐसे नीच स्वभाव के दुष्ट व्यक्ति सतयुग और त्रेता में तो होते ही नहीं है, द्वापर में लोग कुछ इने-गिने पर कलियुग में तो उनके समूह के समूह होंगे । उन्हीं की बहुतायत होगी ।

80. **पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाईं ।।**
निर्नय सकल पुरान बेद कर । केहउँ तात जानहिं कोबिद नर ।। 40.1

अर्थ–सरिस=समान, अधमाई=पाप, निर्नय=निश्चितसिद्धान्त, कोबिद=विद्वान्

श्री राम अब परोपकार पर बल देते हुए भरत से कहते हैं कि हे भाई भरत ! दूसरों की भलाई के समान कोई भी धर्म नहीं है और दूसरों के दुःख देने के समान कोई भी पाप नहीं है । अर्थात् दूसरों का हित करना धर्म है और दूसरों को दुःख देना पाप है । पुराणों और वेदों का यह निश्चित् सिद्धान्त है, उसका उल्लेख ही मैंने किया है । इसके अतिरिक्त इस बात को पंडित लोग भी जानते और मानते हैं अर्थात् यह सत्य है । स्कन्द पुराण में लिखा है–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयात् ।
परोपकारः पुण्यम् पापाय परपीड़नम् ।। –1.8
चार वेद षट शास्त्र में बात मिली है दोय ।
दुःख दीने दुःख होत है सुख दीने सुख होय ।।

चार वेदों और 18 पुराणों में दो बातें ही मुख्य हैं । परोपकार पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना पाप है ।

81. **बड़ें भाग मानुष तनु पावा । सुर, दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।।**
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।।
कालहि कर्महि ईस्वरहि । मिथ्या दोस लगाइ ।।

एहि तन कर फल विषय न भाई । स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाईं । ।
नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ विष लहीं । । 42.4 43.1

अर्थ–सुर=देवता, दुर्लभ–कठिन, सो–वह, परम–व्यक्ति, सुधा–अमृत, सठ=दुष्टा

श्री राम अपने नगरवासियों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि यह मानव जीवन बड़े भाग्य से मिलता है । क्योंकि कामशास्त्र के अनुसार स्त्री पुरुष के रजवीर्य में 70,80,00,256 जीवाणु होते हैं और उनमें से आप एक हो । अतः आप कितने बड़भागी हो । तभी तो मानव को परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया है । सब ग्रंथों में यही कहा गया है कि मानवचोला बड़ी तपस्या एवं कठिनता से प्राप्त होता है । यह साधन धाम एवं मुक्ति द्वार माना गया है । यह धर्म, अर्थ, काम, घर है और मोक्ष का द्वार है क्योंकि मानवशरीर को छोड़कर अन्य शरीरों में ये नहीं है । इस मानवशरीर को धारण करके जिसने परलोक को न सुधार लिया तो वह व्यक्ति भी दुःख को प्राप्त होता है । सिर पीट पीटकर पछताता और ताप सहन करता है और अपने दोष न समझकर काल, धर्म और परमात्मा पर झूठा दोष लगाता है । हे भाई ! इस शरीर को प्राप्त होने का फल विषय भोग नहीं है । सांसारिक भोगों की तो बात ही छोड़िये स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दुःखदाई है । इसलिये जो व्यक्ति मानवशरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं वे मूर्ख अमृत की अपेक्षा विष प्राप्त करते हैं । कवि के कहने का भाव यह है कि मानव जीवन में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का सुन्दर समन्वय होना चाहिये तभी जीवन में सुख, शांति और आनन्द की वृष्टि हो सकती है ।

82. **भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी । ।**
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता । । 44.3

अर्थ–सुतंत्र=स्वतन्त्र, संसृति=जन्ममरण का चक्र

श्री राम ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व सिद्ध करके नगरवासियों से

कहते हैं कि उसकी तुलना में भक्ति स्वतन्त्र है, उसके लिए साधनों की उतनी अपेक्षा नहीं है, ज्ञान कष्टप्रद है जबकि भक्ति सुख की खान है, उसमें सुख का अनुभव होता है । परन्तु उस भक्ति को जीव सत्पुरुषें की संगति के बिना प्राप्त नहीं कर सकता । सत्पुरुष भी बिना पुण्यों के समूह के सुलभ नहीं होते । व्यक्तियों, सज्जनों की संगति इस संसार के जन्ममरण का अन्त हो जाता है । कहने का भाव यह है कि सत्संग से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । वस्तुतः मोक्ष प्राप्ति केवल इच्छा रहित होने से ही होती है ।

83. **बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।**
मोह गएँ बिनु राम पद न दृढ़ अनुराग ।। दोहा 61

अर्थ–अनुराग=प्रेम ।

शिव जी पार्वती से गरुड के कहे वचन सुना रहे हैं । शिव जी कहते हैं कि सत्पुरुषों की संगति मिले बिना भगवान् की कथा सुनने को नहीं मिलती । उस कथा को सुने बिना मोह दूर नहीं होता । जब तक मोह दूर नहीं होता तब तक श्री राम के चरणों में अटल प्रेम भी नहीं होता ।

84. **मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ।** 61.1

अर्थ–अनुराग=प्रेम

शिव जी गरुड से कहते हैं कि श्री राम भी बिना प्रेम के प्राप्त नहीं होते । भले ही योग, तप, साधना की हो, या तपस्या, ज्ञान और वैराग्य भी अर्जित किये हों परन्तु यदि हृदय में सच्चा प्रेम नहीं तो श्री राम का अनुग्रह दुर्लभ है । प्रभुप्रेम के भूखे हैं । एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

मरके सब छोड़ते जीते जी ही छोड़ ।
सबसे नाता तोड़ के प्रभु से तू जोड़ ।।

85. **एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ।।**
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवत सूर कोउ दाता ।। 86.1

अर्थ–बिपुल=बहुत से, कुमारा=पुत्र, सील=स्वभाव, तापस=तपस्वी, ग्याता=ज्ञान

कागभुशुण्डि गरुड से भगवान् का उपदेश सुना रहे हैं । यदि एक पिता

के कई पुत्र होते हैं उन सभी के गुण, स्वभाव और आचरण पृथक्-पृथक् होते हैं, अपितु एक से नहीं होते। उनमें कोई तो विद्वान् होता है तो कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी होता है तो कोई धनी, कोई वीर पुरुष निकलता है तो अन्य दानी होता है। कवि के कहने का भाव यह है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति अद्भुत-अद्वितीय है। क्योंकि संसार के दो व्यक्ति पूर्णतः समान नहीं हो सकते। अतः तुलसीदास जी ने लिखा है–

तुलसी इस संसार में भाँत-भाँत के लोग।
सबसे हिल मिल चलिए नहीं वष संयोग।।

86. **जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।**
प्रीति बिना नहिं भगति दिड़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।

88(ख).4

अर्थ–परतीती=प्रतीति, विश्वास, दिड़ाई=दृढ़ता, खगपति=गरुड।
कागभुशुण्डि गरुड से कह रहे हैं जब तक प्रभु की प्रभुता को पूर्ण रूप से न जाने जायें तब तक विश्वास नहीं होता। जब तक उसकी यथार्थता का विश्वास नहीं हो जाता, तब तक मन में प्रेमभावना उत्पन्न नहीं होती। यदि प्रभु से प्रेम ही न हो तो भक्ति दृढ़ नहीं हो सकती। जैसे कि पानी की चिकनाई नहीं टिकती है।

87. **बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।**
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा।

89(ख).1

अर्थ–काम=कामनाएं, अछत=रहते हुए, जामा=उगा।
कागभुशुण्डि गरुड से कहते हैं कि क्या कभी सन्तोष किये बिना हृदय से कामनाएं मिटती हैं और जब तक मन में कामनाए हैं तब तक स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। क्योंकि मनुष्य को अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए भाग-दौड़ करनी पड़ती है। भाग-दौड़ में शान्ति नहीं और शान्ति के बिना सुख नहीं। बिना श्री राम की भक्ति के क्या कामनाएं मिटती हैं। क्या कहीं भूमि के बिना वृक्ष भी उगता है। अर्थात् नहीं।
तात्पर्य यह है कि जब तक मन में सन्तोष की भावना नहीं आती, तब

तक मनुष्य इच्छाओं की मरुमरीचिकाओं में ही दौड़ता रहता है। उसे सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होती। श्री राम की भक्ति से कामनाएँ भी शान्त हो जाती है, सन्तोष भी उत्पन्न हो जाता है। सन्तोष होने पर शान्ति मिल जाती है। अतः सब सुखों का मूल भक्ति है। क्योंकि संतोष एवं प्रभुभक्ति से ही कामनाओं को नियंत्रित किया जा सकता है। जैसे कबीर जी ने कहा है–

गज धन, गोधन, बाजधन और रतन धन खान।
जग आवै संतोष धन सब धन धूरि समान।

88. **कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।**
दंमिह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।। दोहा 97(क)

अर्थ–ग्रसे=हड़प लिये, सदग्रंथ=वेदादि उत्तम पुस्तकें कल्पि करि–कल्पना करके, घड़कर।

कलियुग के दोषों ने सारे धर्म दबा लिये थे, सारे धार्मिक ग्रन्थ वेद, स्मृति आदि नष्ट हो गये थे। धर्माचार्य होने का मिथ्या अभिमान करने वाले ढोंगियों ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार कल्पना करके बहुत से सम्प्रदाय चला दिये थे। रास्ते का वाचक पंथ यहाँ सम्प्रदाय के लिए प्रयुक्त है। जैसे आजकल भी कबीर पंथ, दादू पंथ आदि शब्द प्रचलित है। तात्पर्य यह है कि वेदादि को प्रमाण न मानते हुए मनमाने मार्ग चलाये थे जिन्हें धर्म मानने लगे थे।

89. **बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।।**
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।
97(ख).1

अर्थ–बरन धर्म=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों के कर्तव्य, श्रुति विरोध रति=वेद प्रतिपादित कर्मों का निषेध, श्रुति बेचक=वेदों को बेचने वाले, रुपया लेकर उनका पाठ करने वाले, भूप प्रजासन=राजा और प्रजाओं से, निगम अनुशासन=वेदों की आज्ञा।

कागभुशुण्डि गरुड से कलिधर्म कह रहे हैं उस समय चारों वर्ण और चारों आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में अपने-अपने

धर्मों या कर्त्तव्य का पालन नहीं करते थे, सभी पुरुष और स्त्री वेदों के वचनों का या उनके बतपये कर्मों का निषेध करते थे। ब्राह्मण राजा या प्रजा के पास वेद बेचते थे—उनसे रुपया लेकर वेदपाठ करते थे। वैदिक आज्ञा का पालन कोई नहीं करता था।

90. **मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।**
मिथयारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।। —97(ख).2

अर्थ—भावा=अच्छा लगना, गाल=डींग मारना, दंभ=घमंड, रत=अनुरक्त।

काकभुशुण्डि गरुड से कहते है कि कलयुग में न वर्ण धर्म रहता है और न चारों आश्रम रहते हैं। यहाँ तक कि अधिकाँश व्यक्ति वेद विरुद्ध हो जाते हैं। अतः जिस व्यक्ति को जो अच्छा लगता है वही उसका मार्ग होता है और उसी का वह अनुसरण करता है। डींग मारने वाला व्यक्ति ही पंडित कहलाता है। जिनके कार्यों का श्रीगणेश ही आडम्बर है। जो ऐसे कामों एवं दंभो से अनुरक्त है उनको संत कहते हैं। कवि के कहने का भाव यह है कलियुग में अभिमान, पाखंडों और दंभी साधनों का ही बोलबाला होता है जैसे कि हम आजकल देखते हैं कि अधिकतर साधु ऐसे ही है और सच्चा साधु कोई बिरला ही है। कवि ने आधुनिक साधु के विषय में सत्य ही लिखा है—

फूटी आँख विवेक की, लखै न संत असंत।
जा के साथ दस बीस है, वही कहाते महंत।।

91. **कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।**
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं।। 102(ख).1

अर्थ—समर्पि=सौंपकर

कागभुशुण्डि अब एक-एक करके प्रत्येक युग में मुक्ति के उपायों का वर्णन कर रहे हैं। सतयुग में सभी लोग योगी एवं विज्ञानी होते हैं। उसमें प्राणी प्रभु का ध्यान करके संसार से तर जाता है। परन्तु त्रेता युग में मनुष्य अनेक प्रकार के यज्ञ करते-कराते थे, परन्तु यज्ञ करने के पश्चात् उन्हें भगवान् को अर्पित करके इस संसार सागर से पार पाते

थे ।

समर्पित का तात्पर्य यह है कि स्वर्ग आदि फलों की कामना न करते हुए कर्म सम्पन्न करके अन्त में इस कर्म से भगवान् प्रसन्न हो, यह मैं उन्हीं को सौंपता हूँ, इसमें अब मेरा कुछ भी नहीं है । ऐसा कहकर वह कर्म भगवान् को सौंप देते थे । तब कर्मफल प्रभाव नहीं दिखाता । अन्यथा उसको भोगने के लिए ही संसार में फिर से जन्म लेना पड़ता है । समर्पण के सम्बन्ध में गीता का अधोलिखित श्लोक तुलना के योग्य है–

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यज्चपश्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् । । **9.27**

जो भी कर्म करता है, जो खाता है, जो यज्ञ करता है या जो दान देता हे और जो तप करता है वे सभी कर्म मुझे अर्पित कर दे ।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाय न दूजा । ।
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पवहिं भव थाहा । ।

102(ख) 2

कागभुशुण्डि गरुड से द्वापर और कलियुग में साधना का मार्ग बता रहे हैं । द्वापर युग में व्यक्ति श्री राम के चरणों की पूजा अर्चना करके संसार सागर को तरते हैं । उस काल में इसके अतिरिक्त मुक्ति का और कोई साधन नहीं है । किन्तु कलियुग में केवल परमेश्वर के गुणों की कथा करते हुए भी व्यक्ति इस संसार सागर का अन्त पा लेते हैं

कलिजुग जोग न जन्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना । ।
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि । ।102(ख).3

कलियुग में रामभक्ति ही उद्धार का एकमात्र साधन है । इस भाव को लेकर कागभुशुण्डि गरुड को उपदेश देते हैं । कलियुग में मुक्ति का आधार न योग है, न यज्ञों का अनुष्ठान है और न ज्ञान प्राप्ति है । अपितु श्री राम के गुणों का कीर्तन ही अकेला सहारा है । जो सब अन्य साधनों का भरोसा छोड़कर श्री राम को भजते हैं तथा बड़े प्रेम से श्री राम के गुणों को गाया करते हैं ।

सोइ भव तर कछ संसय नाहीं । नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ।।
संसय कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पन्य होहिं नहिं पापा ।।

102(ख).4

कागभुशुण्डि गरुड को उपदेश देते हैं कि सदा श्री राम के गुणों का कीर्तन करने वाले कलियुग में मुक्ति पाते हैं । वे ही लोग कलियुग में इस संसार सागर को पार करते हैं । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । प्रभु नाम की महिमा कलियुग में प्रत्यक्ष है, उसे सब जानते हैं । इसके अतिरिक्त कलियुग का एक बड़ा पवित्र प्रभाव भी है कि उसमें मानसिक पुण्य तो हो जाते हैं परन्तु पाप नहीं होते । तात्पर्य यह है कि सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि मन में कोई बुराई लाने पर भी पाप लगता है । यह अन्य युगों में तो थी परन्तु कलियुग में नहीं है । इसमें यदि उत्तम विचार, प्रभुस्मरण ध्यान आदि कीजिए तो उसका पुण्य मिलता है परन्तु यदि कोई पाप कर्म करने की बात मन में आ भी जाये तो जब तक उस पाप कर्म को कर न ले तब तक उसका पाप नहीं लगेगा । मन से प्रभुभक्ति का विचार और ध्यान व्यर्थ नहीं जाएगा ।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास ।
गाइ राम गुन मन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ।। दोहा 103(क)

कागभुशुण्डि कलियुग की प्रशंसा कर रहे हैं । यदि व्यक्ति विश्वास करे तो कलियुग के समान और कोई युग नहीं है । इसमें श्री राम के पवित्र निर्दोष गुणों को गाकर वह बिना प्रयत्न किये इस संसार सागर को तर सकता है ।

92. **प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।**
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ।। दोहा 103(ख)

अर्थ–जेन केन=येन केन, जिस किसी से

कागभुशुण्डि गरुड से कलियुग की एक विशेषता का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि सतयुग में धर्म के सत्य, दया, तप और दान ये चार चरण थे परन्तु कलियुग में एक दान ही प्रधान रह गया है जिस किसी भी ढंग से देने पर भी दान श्रेय ही देता है । तात्पर्य यह है कि बहुत से लोग

तिरस्कार के साथ देते हैं यद्यपि वह तामस दान माना जाता है तब भी कल्याण ही करता है ।

93. **पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर ।**
न तु कामी विषपाबस बिमुख जो पद रघुबीर ।। दोहा 115(क)
कागभुशुण्डि गरुड के प्रश्न के उत्तर में ज्ञान से भक्ति का अन्तर बात रहे हैं । स्त्री के आकर्षण को वही पुरुष त्याग सकता है जो बैरागी और धीर बुद्ध या स्थितप्रज्ञ हो । विषय वासनाओं के वश में हुआ कामपरायण तथा श्री राम के चरणों की भक्ति से दूर रहने वाला नहीं । विरक्त और स्थितप्रज्ञ पुरुष माया को ठुकरा सकते हैं, उससे बच सकते हैं भोग परायण और राम भक्ति से दूर व्यक्ति माया के प्रपंच में फंस जाते हैं ।

94. **ईस्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।**
सो मायाबस भयउ गोसाईं । बँध्यो कीर मरकट की नाईं ।। 116(ख) 1.2
काकभुशुण्डि गरुड जी को ज्ञान एवं भक्ति में अंतर समझाते हुए कहते हैं कि आत्मा परमात्मा का अंश है और यह आत्मा अविनाशी, चेतन, स्वाभाविक, निर्मल एवं सुखराशि है । परन्तु यह आत्मा तोते और बंदर की भाँति स्वयं मोहमाया के जाल में बँधी हुई हैं तोतो को पकड़ने के लिये बहेलिया पृथ्वी पर दो लकड़ियां गाड़ कर उन्हें एक नली से बाँध देता है और पृथ्वी पर दाने डाल देता है । जब तोते दाने चुगने आते हैं और नली पर दाने चुगने के लिये झुकते हैं तब नली घूम जाती है और वे उलटे लटक जाते हैं । बहेलिया आकर उन्हें पकड़ लेता है । इसी प्रकार वानरों को पकड़ने के लिए तंग मुँह के चनों से भरे हुए घड़ों को पृथ्वी में गाड़ देते हैं । जब वानर आकर घड़ों में अपने-अपने हाथ डालते हैं और चनों से मुट्ठी भर जाने से उनका हाथ घड़ों से बाहर नहीं निकलता है और बहेलिया आकर उन्हें पकड़ लेता है ।
वस्तुतः वैदिक सिद्धान्त के अनुसार आत्मा, परमात्मा एवं प्रकृति तीन अनादि एवं स्वतंत्र सत्ताए हैं । इसे ही त्रैतवाद के नाम से पुकारा जाता है । परन्तु कुछ विद्वानों ने आत्मा को परमात्मा का अंश इसलिये कह

दिया क्योंकि दोनों अनादि एवं चेतन सत्ताएँ हैं । आत्मा अल्पज्ञ है और परमात्मा सर्वज्ञ है । अतः वह परमात्मा का अंश न होकर एक स्वतंत्र, अनादि सत्ता है ।

95. **ग्यान पंथ कृपान कै धारा । परत खगेस होई नहिं बारा ।।**
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परम पद लहई ।। 118(ख).1

अर्थ–ग्यान=ज्ञान का, निर्विघ्न=बिना बाधा के, निर्बहई=निभा देता है, पूरा कर लेता है, कैवल्य=मुक्ति ।

कागभुशुण्डि गरुड को ज्ञानमार्ग की कठिनता बता रहे हैं कि ज्ञानमार्ग से साधना करना तलवार की धार पर चलना है । जिस प्रकार उस पैनी धार से कभी भी गिर सकता है, इसी प्रकार इस साधना से साधक को, हे गरुड जी ! गिरते देर नहीं लगती । हाँ, यदि कोई इस मार्ग को बिना किसी बाधा के निभा लेता है, इससे चलकर अपनी साधना पूरी कर लेता है, वह निस्सन्देह मुक्ति के सर्वोच्च स्थान को पा लेता है ।

96. **नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ।।**
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी । ग्यानि बिराग भगति सुभ देनी ।। 120(ख).5

अर्थ–निसेनी=निश्रणी, सीढी, अपवर्ग=मोक्ष

कागभुशुण्डि गरुड के प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं मानव शरीर के समान कोई भी शरीर नहीं है । यह आत्मा अपने उद्धार के लिए सदा उसे माँगा करता है अर्थात् उसे पाने की अभिलाषा रखता है । वह मानव शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष तक पहुँचने की सीढ़ी है । अर्थात् इस शरीर को पाकर दुष्कर्म करने से नरक, शुभ कर्म करने से स्वर्ग और शुभ कर्मों के फल की कामना न करते हुए भक्ति और ज्ञान की साधना करने से मुक्ति प्राप्ति हो सकती है । यह शरीर ज्ञान-वैराग्य, भक्ति, कल्याण देने वाला है । इन सबकी साधना और उपलब्धि इस मानव शरीर से ही हो सकती है ।

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं विषय रत मंद मंद तर ।।
काँच किरिच बदलें ते लेहीं । कर ते डारि परस मनि देहीं ।। 120(ख) 6

अर्थ – मद=मूर्ख, मंदतर=अतिक्षुद्र, किरिच=टुकड़े ।

कागभुशुण्डि मानवशरीर की प्रशंसा कर रहे हैं । जो व्यक्ति उस दुर्लभ शरीर को पाकर प्रभुभक्ति नहीं करते, वे मूर्ख क्षुद्रतम विषय भोगों में आसक्त होते हैं, वे अपने हाथ आई पारसमणि को परे फेंककर काँच के टुकड़े उसके बदले में लेते हैं । भक्ति छोड़कर विषयों में आसक्त होना पारस पत्थर फेंक कर काँच के टुकड़े अपनाने के समान हैं ।

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख जाग नाहीं ।
पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ।। 120(ख)7

कागभुशुण्डि गरुड के दूसरे तीसरे प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं । संसार में ग़रीबी के बराबर दूसरा कोई दुःख नहीं है और किसी सत्पुरुष की संगति मिलने के बराबर कोई सुख नहीं है । हे पक्षिराज गरुड़ ! वाणी, मन और कर्म से दूसरों की भलाई करना यही सत्पुरुषों का जन्मजात स्वभाव है ।

संत सहहिं दुख पर हित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ।।
भूर्ज तरू सम संत कृपाला । परहित निति सह बिपति बिसाला ।।

120 (ख) 8

अर्थ–भूर्जतरु=भोजपत्र के वृक्ष, निति=नित्य ।

कागभुशुण्डि गरुड के उत्तर में सज्जनों और दुर्जनों का स्वभाव बता रहे हैं । सत्पुरुष तो दूसरों की भलाई के लिए अनेक कष्ट उठाया करते हैं परन्तु अभागे दुष्ट दूसरों को कष्ट ही पहुँचाते हैं । दयालु सज्जन तो भोजपत्र के वृक्ष के समान होते हैं जो कि नित्य ही दूसरों के लिए असह्य दुःख सहते हैं । तात्पर्य यह है कि दूसरों के काम आने के लिए वे अपनी खाल भी उतरवाते हैं । जैसे लोग लिखने के लिए भोजवृक्ष की छाल उतारते हैं । ऐसे ही सत्पुरुष दूसरों के हित के लिए अपना शरीर भी दे देते हैं ।

सन इव खल पर बंधन करई । खाल कड़ाइ बिपत्ति सहि मरई ।।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ।।120(ख) 9

अर्थ – सन=सम, अहि=सर्प, मूषक=चूहा ।

कागभुशुण्डि दुर्जनों का सवभाव बता रहे हैं । दुष्ट सन की भाँति दूसरों को बन्धन में डालते हैं । सन अपनी खाल निकलवा कर जो कष्ट उठाता है, उसे सहकर मरता है । तात्पर्य यह है कि सन की छाल उतारी जाती है । उसकी रस्सी बाँटी जाती है जो औरों को बांधने के काम आती है । इसी प्रकार दुष्ट अपनी करतूत से स्वयं कष्ट सहकर भी औरों को कष्ट में डालते हैं । भले ही दण्डस्वरूप बाद में उनकी खाल भी खिंच जाये । वे लोग बिना अपना स्वार्थ होने पर भी औरों को कष्ट ही पहुँचाते हैं । कुछ लोग तो अपना हित देखकर औरों की हानि करते हैं परन्तु दुर्जन अपना लाभ हो न हो, दूसरों की हानि अवश्य करते हैं । हे गरुडजी ! उनकी स्थिति साँप और चूहे की सी है । साँप बिना स्वार्थ के भी दूसरों को डंसते हैं । इसी प्रकार चूहा अपना लाभ न होने पर भी वस्त्र और पुस्तक कुतर देता है ।

पर संपदा बिनासि नसाहीं । जिति ससि हति हिम उपल बलाहीं ।।
दुष्ट उदय जग आरति हेतु । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतु ।। 120(ख).10

अर्थ – ससि=अनाज, हत=नष्ठ करके, उपल=ओले, उदय=जन्म, बलाही=गल जाता है, आरति=पीड़ा, अधम =नीच ।

कागभुशुण्डि दुर्जनों का स्वभाव बता रहे हैं । दुष्ट लोग दूसरों की सम्पत्ति को हानि पहुँचाकर स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं जैसे ओले खड़ी खेती को उजाड़कर आप भी गल जाते हैं । दुर्जन का जन्म सदा दूसरों के कष्ट का ही कारण होता है । जैसे कि लोक में अशुभ रूप में प्रसिद्ध धूमकेतु विनाश के लिए ही निकलता है ।

संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ।।
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गरीसा ।। 120(ख) 10

अर्थ – तमारी–अंधकार का शत्रु सूर्य, गरीसा=बड़ा ।

कागभुशुण्डि सत्पुरुष का लक्षण समझा रहे हैं । उसके विपरीत सत्पुरुषों का जन्म सदा दूसरों को सुख देने वाला होता है । जैसे अंधकार के शत्रु सूर्य और चन्द्रमा सारे जगत् को शीतलता से सुख पहुँचाते हैं । वेदों से प्रतिपादित सबसे बड़ा धर्म अहिंसा दूसरे का प्रकाश और हानि न पहुँचाना है । उसके विरुद्ध दूसरों की निन्दा से ,

बढ़कर कोई पाप नहीं है ।

97. **कमठ पीठ जामहिं बरु बारा । बंध्या सुत बरु काहुहि मारा । ।**
फूलहिं नभ बरु बहुविधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला । ।
तृषा जाइ बरु मृगजन पाना । बरु जामहिं सस सीस बिषाना । ।
अधकारु बरु रबिहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै । ।
हिम ते अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ।
बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल । ।

7.121(ख)8-10, 122(क)

अर्थ–कमठ पीठ=कछुए की पीठ, जामहिं=जम जाए, बरु=भले ही, बारा=बाल, सिकता=रेत, अपेल=अटल ।

कागभुशुण्डि गरुड़ को उपदेश देते हुए कहते हैं कि प्रभु भक्ति के बिना सुख नहीं मिल सकता । भले ही कछुवे की पीठ पर बाल जम जायें, भले ही बाँझ से जन्मा लड़का किसी को मार डाले, भले ही आकाश तल पर अनेक प्रकार के फूल खिल जायें परन्तु प्रभुभक्ति से दूर रहकर जीव कभी सुख नहीं पा सकता । यह असंभवोक्ति है । कछुवे की पीठ कड़ी होती है, उस पर कभी भी रोम नहीं जम सकते, बाँझ का पुत्र यदि होगा ही नहीं तो किसी को मारेगा कैसे ? आकाश शून्य है, उस में फूल खिलने का प्रश्न ही नहीं उठता । इसी कारण जो वस्तु लोक में न होती हो, उसकी तुलना आकाश के पुष्प से की जाती है । जैसे ये बातें असम्भव है, इसी प्रकार प्रभु से दूर रहकर सुख पाना भी सम्भव नहीं है । दर्शन में सिद्धान्त को समझाने के लिए इस प्रकार के असंगत से लगने वाले उदाहरण दिये जाते हैं ।

प्रभुभक्ति बिना सुख नहीं मिल सकता । भले ही मरुमरीचिका के पानी को पीकर किसी की प्यास बुझ जाये, भले ही खरगोश के सिर पर सींग जायें, तथा भले ही अंधेरा सूर्य को नष्ट कर दे । परन्तु श्री राम की भक्ति से दूर रहने वाला जीव सुख नहीं पा सकता । यहाँ भी पहले की भाँति असंभवोक्ति का आश्रय लिया गया है । ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी

में रेत के मैदान में जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तब चारों ओर फैली धूप लहराती जलराशि की भाँति दिखती है । प्यासा मृग उसे वास्तविक पानी समझकर पीने को इधर-उधर भागता है परन्तु कहीं पानी नहीं मिलता । इसी लिए उसकी प्यास को मृगतृष्णा कहा जाता है । खरगोश के माथे पर सींग न होना लोक सत्य ही है । सूर्य अंधेरे को नष्ट करता है यहाँ विपरीत कल्पना की है । जैसे ये तीनों बातें असम्भव हैं इसी प्रकार प्रभु से विमुख रहने वाले को सुख मिलना असंभव है । बर्फ से भले ही अग्नि प्रकट हो जाप अर्थात् ये सब अनहोनी बातें चाहे हो जायें परन्तु प्रभु से विमुख होकर कोई सुख नहीं पा सकता है ।

भले ही पानी को बिलोने पर घी निकल आये और रेत को कोल्हू में पेरने से तेल निकल जाये परन्तु प्रभुभक्ति के बिना संसार-सागर को नहीं तरा जा सकता । यह अटल सिद्धान्त है, यह ऐसा निष्कर्ष है जिसका संभव नहीं । दूध को दही के रूप में जमाकर उसे बिलोने पर घी या मक्खन निकलता हैं यह तब है जब कि दूध में घी या मक्खन रमा हुआ है । वही दूध फटकर पानी बन जाता है तो उससे मक्खन नहीं निकलता । इसलिए एक उर्दू शायर ने लिखा है—

इस दुनियाँ में हम प्रभुनाम लेकर बहुत मशहूर होते गये ।
पहले हम काँच के टुकड़े थे अब कोहेनूर हो गये । ।

98. **मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी । सुनि रघुबीर भगति रस सानी । ।**
राम चरन नूतन रति भई । माया जनित बिपत्ति सब गई । । **124(ख) 1**

अर्थ—कृतकृत्य=कृतार्थ, जो अपने सब करने योग्य कार्य पूरे कर चुका हो, नूतन=नवीन ।

कागभुशुण्डि के वचनों से संशयरहित गरुड उनसे कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं । हे भगवन् ! श्री राम के प्रति भक्तिरूपी रस से सनी हुई आप की वाणी सुनकर मैं कृतार्थ हो गया । मेरा प्रयोजन पूर्ण हो गया । श्री राम के चरणों में मेरा प्रेम नया हो गया है । माया के कारण मझे जो महाभ्रम

का संकट आ खड़ा था, वह भी मिट गया है। शिव एवं नारद जी वाणी सुनी परन्तु मैं कृतार्थ नहीं हुआ परन्तु आपकी वाणी सुनकर धन्य हो गया।

99. **संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।**

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।। 124(ख).4

अर्थ–नवनीत=मक्खन, कबिन्ह=कवियों, परि=परन्तु, द्रवहि=दुःखी होना, सुपुनीता=परम पवित्र संत

गरुड़ कागभुशुण्डि को उपदेश देते हुए कहते हैं कि सच्चे संतों का हृदय मक्खन के समान कोमल होता है, ऐसा कवियों ने कहा है, परन्तु उनका यह कहना सत्य नहीं है। उन्होंने यह उपमा ठीक नहीं दी है क्योंकि मक्खन तो अपनी ही गर्मी या ताप से पिघलता है। परन्तु इसके विपरीत परम पवित्र संत पराये दुःख को देखकर द्रवीभूत हो जाते हैं। कहने का भाव यह है मक्खन में कोमलता अपने लिये है, दूसरे के परिताप से मक्खन में कोई विचार उत्पन्न नहीं होता। अतः वह नहीं पिघलता जब स्वयं अग्नि पर ताप लगता है तभी पिघलता है। अपने दुःख से दुःखी होना तो दुष्टों में भी है। अतः उसकी प्रशंसा ही क्या? परन्तु परम पवित्र संत दूसरों के दुःख सह नहीं सकते और व्याकुल हो जाते हैं। जैसे आचार्य सुदर्शन जी लिखते हैं–

संत दूसरों के ताप से पिघलता है। वह करुणा से भर जाता है। इसलिए मुझे संत बड़े प्रिय लगते हैं।

–संगीतमय रामकथा पृ० 638

इसी प्रकार एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

आग लगी आकाश में झर झर गिरे अंगार।

संत न होते जगत् में जल मरता संसार।।

100. कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।। –130 (ख)

अर्थ–कामिहि=कामी, पिआरि=प्यारी, जिमि=वैसे ही, मोहि= मुझे ।

तुलसीदास जी श्री राम के अनन्य भक्त थे । इसी विचार को व्यक्त करते हुये वे कहते हैं कि जैसे कामी पुरुष को नारी और लोभी को धन प्यारा होता है । वैसे ही मुझे श्री राम प्यारे लगते हो । यहाँ पर तुलसीदास ने राम भक्ति की पराकाष्ठा दिखाई है । जैसे कबीर जी लिखते हैं–

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम ।

कबीर का गुरु संत है, संतन का गुरु नाम ।।

विषयी पुरुष तो स्त्री के प्रति अनुरक्त होता है, लोभी धन की आकर्षित होता है । लेकिन कबीर जी तो संतमहिमा का वर्णन करते हैं और संत पुरुष परमात्मा के नाम का गुणगान करते हैं ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी
17. ओ३म्
18. गायत्रीरहस्य
19. अमर धर्मग्रंथ
20. सुखी कौन ?
21. वेदसार
22. ज्ञानगंगा
23. पाँच शत्रु
24. मानसपीयूष (आपके हाथ में है)

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. अमर नीतिग्रंथ
2. पुराणपरिचय
3. ईश्वरसिद्धि
4. राष्ट्रभाषा हिन्दी
5. संस्कार
6. गीतांजलि
7. आर्यसमाज
8. ज्ञानामृत
9. यज्ञ
10. संत
11. संतवाणी
12. भतृहरिशतक
13. ब्रह्मचर्य
14. गृहस्थ
15. धर्म
16. कर्म
17. मन
18. भारत के क्रांतिकारी
19. भारत के भक्त
20. प्रभुभक्तु
21. सच्ची वाणी
22. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
23. महावीर हनुमान
24. योगिराज श्रीकृष्ण
25. आदिशंकराचार्य
26. आचार्य चाणक्य
27. स्वामी रामतीर्थ
28. दस गुरु
29. आर्यसमाज के महामानव
30. आत्मकथा
31. वैदिक मनुस्मृति
32. वैदिक उपनिषद्वाणी
33. वैदिक दर्शनवाणी
34. वैदिक महाभारत
35. वैदिक गीता
36. संस्कृतरहस्य
37. साधना
38. गीतापीयूष
39. दादा पोते की बातें
40. दादी पोती की बातें
41. दो दोस्तों की बातें
42. **General English (Part I to V) (For All Classes)**
43. **Great Thoughts**
44. **Great Indians**
45. **Great Thinkers**
46. **Great Scientists**
47. सामान्य हिन्दी (भाग I-II) (सब कक्षाओं के लिये)
48. 1000 हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तरी
49. हिन्दी साहित्य का इतिहास
50. भाषा विज्ञान
51. आलोचना

कृपया पाठकगण इस ओर भी ध्यान दें कि इनकी निम्नलिखित पुस्तकों को इनकी Website : www.dpkapoorbooks.co.in पर भी देखा जा सकता है ।

1. अमृतवाणी
2. आर्यसमाज
3. अमर नीतिग्रंथ
4. अमर धर्मग्रंथ
5. ईश्वरसिद्धि
6. गायत्रीरहस्य
7. ज्ञानामृत
8. गीतांजलि
9. क्या आप जानते हैं ?
10. ओ३म्
11. पुराणपरिचय
12. राष्ट्रभाषा हिन्दी
13. संस्कार
14. संत
15. संतवाणी
16. शरणागति
17. शेर-ओ-शायरी
18. यज्ञ
19. भर्तृहरिशतक
20. ब्रह्मचर्य
21. गृहस्थ
22. धर्म
23. कर्म
24. मन
25. सुखी कौन ?
26. भारत के क्रांतिकारी
27. भारत के भक्त
28. प्रभुभक्ति
29. वेदसार
30. ज्ञानगंगा
31. पाँच शत्रु
32. सच्ची वाणी
33. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
34. महावीर हनुमान
35. योगिराज श्रीकृष्ण
36. आदिशंकराचार्य
37. आचार्य चाणक्य
38. महर्षि दयानंद
39. स्वामी विवेकानंद
40. स्वामी रामतीर्थ
41. दस गुरु
42. आर्यसमाज के महामानव
43. आत्मकथा
44. वैदिक साहित्य
45. वैदिक मनुस्मृति
46. वैदिक उपनिषद्वाणी

(जारी...)

47. वैदिक दर्शनवाणी
48. वैदिक रामायण
49. वैदिक महाभारत
50. वैदिक गीता
51. संस्कृतरहस्य
52. साधना
53. मानसपीयूष
54. गीतापीयूष
55. दादा पोते की बातें
56. दादी पोती की बातें
57. दो दोस्तों की बातें
58. **Great Thoughts**
59. **Great Indians**
60. **Great Thinkers**
61. **Great Scientists**
62. **General English**
    (Part I to V)
    (For All Classes)
63. सामान्य हिन्दी (भाग **I-II**)
    (सब कक्षाओं के लिये)
64. 1000 हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तरी
    (सब प्रकार की प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए)
65. हिन्दी साहित्य का इतिहास
    (पंजाब विश्वविद्यालय की एम.ए. हिन्दी की कक्षा के लिए)
66. भाषा विज्ञान
    (पंजाब विश्वविद्यालय की एम.ए. हिन्दी की कक्षा के लिए)
67. आलोचना
    (पंजाब विश्वविद्यालय की एम.ए. हिन्दी की कक्षा के लिए)